चन्दामामा

जनवरी १९८६

चन्दामामा

संस्थापकः चक्रपाणि   संचालकः नागिरेड्डी

हर मनुष्य के अंदर उसके उत्तम और अधम गुणों का मूल कारण समान नहीं हुआ करता। कई बार परिवेश एक ही होता है, लेकिन कुछ लोग उत्तम गुणों के अधिकारी बन जाते हैं और कुछ लोग दुष्ट स्वभाव के हो जाते हैं। फिर भी जो श्रेष्ठ है, उसमें स्वाभाविक रूप से यह सामर्थ्य होती है कि वह अधम के उद्धार का कारण बन जाता है। "पतन" शीर्षक कहानी में हम इस सत्य की प्रतीति कर सकते हैं।

अमर वाणी

उद्धरत्युत्तमो वंशं, मध्यमः समुपेक्षते ।
अधमस्तु कुले जातः, नाशयत्यखिलं कुलम् ।।

[उत्तम मनुष्य अपने वंश का उद्धार करता है। मध्यम कोटि का मनुष्य अपने वंश के बारे में विचार ही नहीं करता। और जो अधम कोटि का मनुष्य है, वह तो कुल में उत्पन्न होकर सम्पूर्ण कुल का ही नाश कर देता है।]

वर्षः ३८   जनवरी १९८६   अंकः ५

एक प्रतिः २.५०   वार्षिक चन्दाः ३०-००
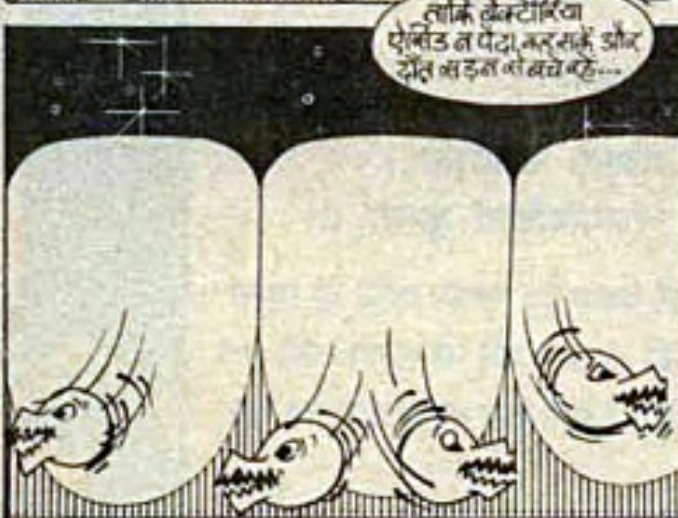
'चन्दामामा' के संवाद

उड़नतश्तरियाँ

क्या ग्रह-मंडलों से 'फ्लाइंग सॉसर्स' नाम की उड़नेवाली वस्तुएं सचमुच पृथ्वी के निकट आ रही हैं ? इस विषय में हम पुख्ता तौर पर कुछ नहीं कह सकते। किन्तु अमरीका की एलेन क्रिस्टल का कहना है कि इस प्रकार उड़नेवाली तश्तरियों को वह अक्सर देखा करती है। इन तश्तरियों के किनारे लोहे से निर्मित हैं और वे अपने चारों ओर मेघों की तरह के कोहरे का निर्माण करते हैं, इसीलिए उनका फोटो लेना संभव नहीं है।

सौर शक्ति द्वारा चालित नौका

जापान के केनिच होरी नाम के नाविक ने पहली बार सौर शक्ति द्वारा चालित नौका पर प्रशांत महासागर पार किया। होनोलूलू से ६,३०० किलो मीटर दूरी पर स्थित चिचिजिमा द्वीप तक पहुँचने में उसे ६५ दिन लगे।

एशिया का सबसे बड़ा पुल

एशिया में सबसे बड़ा तथा विश्व में तृतीय स्थान रखनेवाला पुल हाल ही में मलयेशिया में निर्मित हुआ है। साढ़े तेरह किलोमीटर लंबा यह पुल उत्तर पेनांग राज्य को प्रधान भूखंड के साथ जोडता है।

क्या आप जानते हैं ?

१. संसार में सबसे विशाल बुद्ध की प्रतिमा कहाँ है ?
२. वह मन्दिर कहाँ है, जहाँ बुद्ध के दाँत को सुरक्षित रखा गया है ?
३. 'पृथ्वी सूर्य की परिक्रमा करती है' इस सिद्धान्त को प्रकट करनेवाले किस वैज्ञानिक को धार्मिक अन्ध-विश्वासी लोगों ने अपराधी ठहराने का प्रयत्न किया ?
४. विलियम विल्बर फोर्स नाम के मानवतावादी महापुरुष ने किस उद्देश्य के हेतु कार्य किया ?
५. एशिया के किस देश में सबसे अधिक संख्या में ईसाई बसते हैं ?

उत्तर ६४ वे पृष्ठ पर देखें

अंगारक

प्राचीन काल में अंगारक नाम का एक राक्षस अपने भीषण कृत्यों के लिए लोक-भय का कारण बन गया। उसने अनेक देशों की राजकुमारियों का राजभवनों से अपहरण किया और उन्हें एक निर्जन वन-प्रदेश में एक पहाड़ी गुफ़ा के अन्दर क़ैद कर दिया।

इस समय उज्जयिनी में युवराज महासेन का प्रभुत्व था। वे जितने पराक्रमी थे, उतने ही धर्मनिष्ठ भी। उन्होंने पराशक्ति को लक्ष्य कर घोर तप किया। देवी ने प्रसन्न होकर उन्हें अपना खड्ग प्रदान किया।

एक दिन युवराज महासेन आखेट के लिए निकले। वे वन के मध्यभाग से गुज़र रहे थे कि एक भालू ने उनके रथ को औंधे मुँह गिरा दिया। महासेन को बड़ा आश्चर्य हुआ। उन्होंने रथ से कूदकर भालू पर अपने बाणों का प्रहार किया। लेकिन वह किसी भी बाण से घायल नहीं हुआ और घने बन में भाग गया।

महासेन शाम तक उसकी खोज में भटकते रहे, पर वह भालू कहीं दिखाई न दिया। आख़िर युवराज एक गुफ़ा के पास पहुँचे। गुफ़ा के अन्दर उन्हें किसी के बातचीत करने का आभास हुआ। उन्होंने वहीं रुक कर गुफ़ा से अपने कान लगा दिये।

"पिताजी, आप जब तक भालू के रूप में रहेंगे, तब तक कोई भी आपको हानि नहीं पहुँचा सकता। लेकिन जब आप अपने स्वाभाविक रूप में रहते हैं, उस समय आप अपने को कैसे बचा सकेंगे!" किसी स्त्री ने बड़े कोमल स्वर में पूछा।

"बेटी, तुम चिन्ता न करो! मेरा वज्र का शरीर है। मेरा केवल बाया हाथ असुरक्षित है, सो उस पर मैंने रत्नकवच पहन लिया है। मेरा कोई भी कुछ नहीं बिगाड़ सकता।" अंगारक ने कहा।

युवराज महासेन समझ गये कि आज सुबह उन्होंने अंगारक पर ही वार किया था। वे प्रातःकाल होने तक उस गुफ़ा के पास ही छिपे रहे। सुबह जब अंगारक गुफ़ा से बाहर निकला तो उन्होंने उस पर आक्रमण करके अपने दिव्य खड्ग से उसका बायाँ हाथ काट डाला। राक्षस उसी क्षण मर गया।

इसके बाद महासेन ने सभी राजकुमारियों को मुक्त किया और अंगारक की सुन्दर पुत्री के साथ विवाह कर उज्जयिनी के राजसिंहासन को सुशोभित किया।

पतन

अरावली की पर्वत-मालाओं के निकट एक गुरुकुल था। पंडित कृष्णचंद्र वहाँ के आचार्य थे। स्वभाव से अत्यन्त उदार, विद्या के धनी पंडित कृष्णचंद्र शिक्षक के रूप में सारे देश में यश प्राप्त कर चुके थे। उनके गुरुकुल में समीपवर्ती देशों के विद्यार्थी भी विद्याध्ययन के लिए आया करते थे।

एक शाम गुरुकुल के पास पेड़ों के बीच से आ रहे शोर को सुनकर कृष्णचंद्र उस तरफ़ गये तो उन्होंने देखा एक विद्यार्थी को अन्य चार विद्यार्थी डांट रहे हैं। कृष्णचंद्र ने इस लड़ाई झगड़े का कारण पूछा।

तब मोहन नाम के एक विद्यार्थी ने आगे बढ़कर कहा, "आचार्यवर, हम लोग जो भी आम पकाने के लिए रखते हैं, उन्हें नरेंद्र हर रोज़ चुरा कर खा लेता है। हमने इसे कई बार समझाया कि हमसे माँगकर ले लो, पर यह नहीं मानता। यह और चोरियाँ भी करने लगा है।

पंडित कृष्णचंद्र ने नरेंद्र की तरफ़ देखा। वह सिर झुकाकर ज़मीन में नज़र गाड़े खड़ा था।

आचार्य ने सबसे अपने साथ आने के लिए कहा। जब गुरुकुल के कक्ष में आकर सब अपने स्थानों पर बैठ गये, तो कृष्णचंद्र ने कहा, "देखो, प्रकृति में अत्यन्त चंचल वस्तु पानी है। थोड़ा सा भी मौक़ा मिलते ही वह नीचे की तरफ़ बहने का प्रयत्न करता है। मनुष्य की प्रकृति भी ऐसी ही है। अगर उसका मन ज़रा भी दुर्बल हुआ तो वह आसानी से पतन के मार्ग पर बढ़ जाता है। अगर मनुष्य एक बार पतन का शिकार हो गया तो उसे पूरी तरह पतन के गड्ढे में गिरने में समय नहीं लगता। सब ध्यान देकर सुनो, मैं तुम्हें इस बात के उदाहरण के रूप में श्यामल नाम के एक युवक की कहानी सुनाता हूँ।"

आचार्य ने दो क्षण रुककर कहना प्रारंभ किया: श्यामल बड़ा कुशाग्र बुद्धि और सुदर्शन

निरंजन कुमार

युवक था, लेकिन दुर्जनों की संगति में पड़कर वह बिगड़ चुका था । माता-पिता तथा अन्य बुजुर्गों ने उसे सुधारने के लिए अनेक उपदेश दिये, लेकिन कोई शुभ परिणाम सामने न आया । उसने पढ़ना-लिखना छोड़ दिया था और आवारा लड़कों के साथ घूमा करता था। धीरे-धीरे उसे चोरी करने की आदत भी पड़ गयी ।

उस देश का राजा जयदेव सिंह बड़ा धर्मनिष्ठ और भगवद् भक्त था। उसने बहुत धन खर्च करके देवी के लिए एक मन्दिर बनवाया। उसका निर्माण संगमरमर के पत्थरों से कराया था और स्तंभों में बहुमूल्य धातुओं का उपयोग हुआ था। जब देवी की प्रतिमा की प्रतिष्ठा हुई तो उसे बहुमूल्य आभूषणों से सज्जित किया गया ।

देवी के कंठ में जो रत्नहार पहनाया गया, उसके मध्यभाग में एक रत्न जड़वाया गया, जिसकी क़ीमत करोड़ों रुपयों में आँकी गयी। इस रत्न के प्रभाव के बारे में यह चर्चा थी कि वह सारे देश के लिए माँगलिक है ।

"प्रतिवर्ष नवरात्र में देवी का उत्सव अत्यन्त भव्य रूप में मनाया जाता था। इस उत्सव में लाखों रुपया खर्च होता था और इसमें भाग लेने के लिए कई देशों के राजा, प्रमुख अधिकारी, धार्मिक गुरु, आचार्य आदि भी आया करते थे ।

उस उत्सव में एक बार पड़ोसी देश का राजा कालनाथ भी अभ्यागत हुआ। उसकी दृष्टि देवी के कंठ में शोभायमान रत्नहार पर पड़ी। मध्यभाग में जटित हीरे को देखकर राजा आश्चर्य चकित रह गया । वह हीरों का पारखी था, सहज ही उसके मूल्य को आँक सका ।

राजा कालनाथ उत्सव समाप्त होते ही कोई संकल्प करके अपने देश को लौट गया। उसने जाते ही अपने प्रधान गुप्तचर से बातचीत की और उसे सब समझाकर उस रत्न को चुरा लाने का काम सौंप दिया ।

प्रधान गुप्तचर वीरभद्र राजा का अत्यन्त विश्वास पात्र था और राजा के गोपनीय कामों को बड़ी कुशलता से संपन्न करता था । राजा कार्य-पूर्ति के बाद हमेशा ही वीरभद्र को श्रेष्ठ पुरस्कार दिया करता था ।

वीरभद्र उस बहुमूल्य रत्न को चुरा लाने के लिए पड़ोसी देश में गया। उसने पुजारी से अन्तरंग मित्रता कायम कर ली और फिर उसे प्रलोभन देकर अपने काम में मदद देने के लिए तैयार कर लिया।

उस दिन बुधवार था। दोनों ने अगले दिन गुरुवार की रात को रत्नहार हड़प लेने का निश्चय कर लिया। ठीक उसी रात श्यामल अपने मित्रों के साथ देर तक समय बिताकर लौट रहा था। उसे प्यास लगी तो वह अपनी प्यास बुझाने के लिए मन्दिर के कुएँ के पास रुक गया। तभी उसने देखा पुजारी एक अपरिचित आदमी के साथ मन्दिर की तरफ़ जा रहा है। श्यामल की समझ में नहीं आया कि आधीरात के समय पुजारी उस आदमी को लेकर मन्दिर में क्यों जा रहा है।

श्यामल के मन में पुजारी की नेकनीयती पर सन्देह हुआ। वह पास की दीवार फांदकर मन्दिर में घुसा और गर्भगृह की सीढ़ियों के पास अंधेरे में छिप गया। थोड़ी देर बाद पुजारी वहाँ आया, गर्भगृह का ताला खोल वह अन्दर गया। कुछ क्षण बाद श्यामल भी गर्भगृह में गया, पुजारी के पीछे खड़े होकर आवाज़ को भारी और गंभीर बना कर बोला, "पुजारी, इस समय तुम यहाँ क्या कर रहे हो ?"

इस भारी-भरकम आवाज़ को सुनकर पुजारी घबरा गया। उसके हाथ काँपने लगे और रत्नहार छूट कर नीचे गिर गया।

श्यामल ने वह रत्नहार अपने हाथ में उठा लिया और कहा, "डरो मत, क्या तुम यह
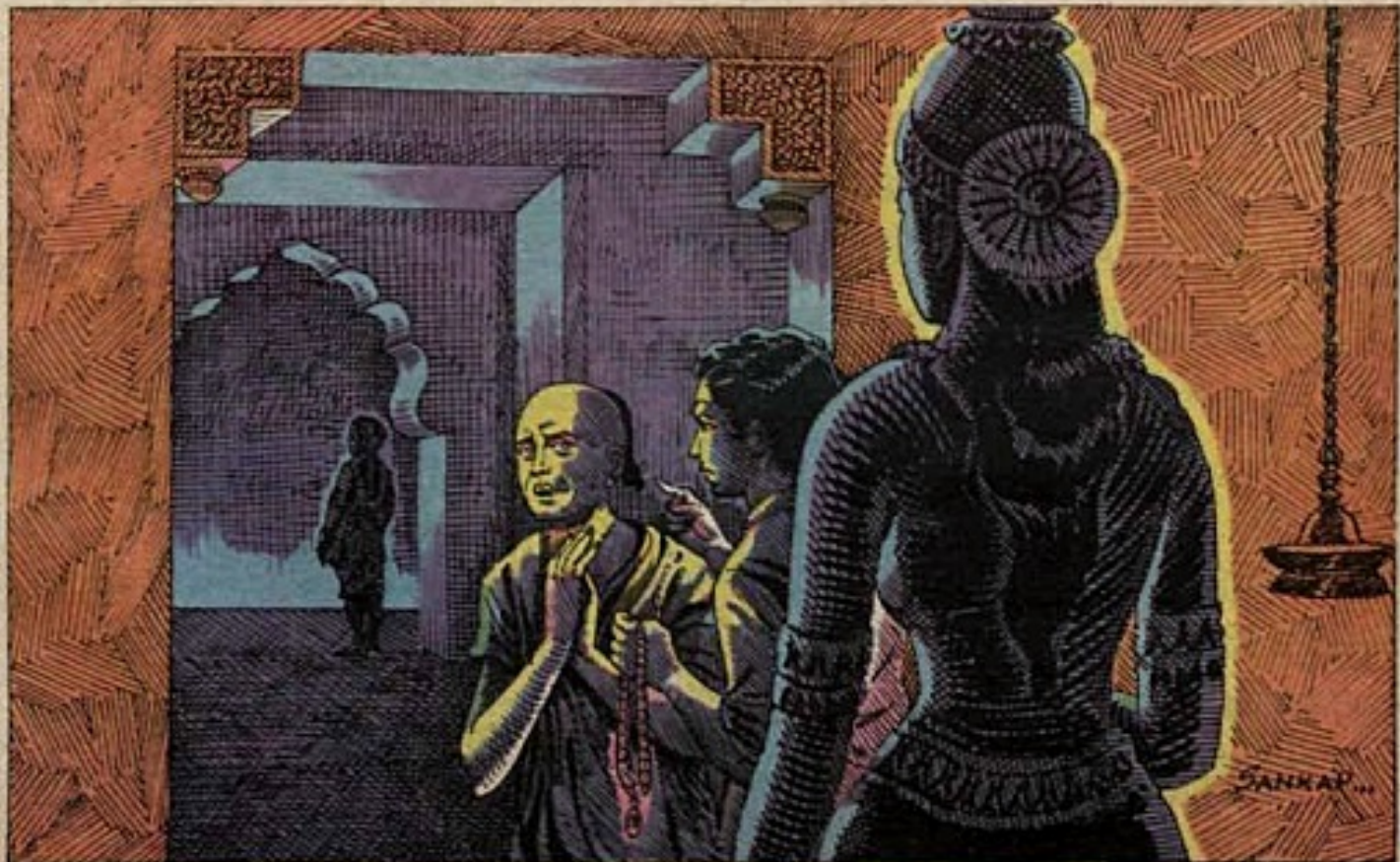
रत्नहार बेचना चाहते हो ? तुम्हारे साथ वह अजनबी कौन है ?"

पुजारी ने सारा किस्सा सुना दिया। श्यामल ने पुजारी से कहा, "देवी का हार एक विदेशी को दे देने पर अमंगल होगा। हमारे हाथों में रहने पर कम से कम यह देश में तो बना रहेगा ! सोचो, क्यों न हम दोनों ही इसके मालिक बन जायें ?"

पुजारी ने सहर्ष स्वीकार कर लिया। इसके बाद पुजारी ने गर्भगृह का ताला लगाया और श्यामल के साथ बाहर आया। वीरभद्र गर्भगृह के बाहर पहरा दे रहा था। श्यामल ने पीछे से आकर उसके सिर पर लाठी का वार किया। वह उसी क्षण वहीं ढेर हो गया। पुजारी ने चाबियों का गुच्छा उसकी बगल में फेंक दिया। अब वे दोनों नगर की सीमा की तरफ़ बढ़ चले।

नगर की सीमा पार करते ही दोनों के मन में उस हार को हड़प लेने की लालसा हुई। पर वे चुपचाप चलते रहे। अगले दिन दोपहर को वे वनमार्ग के पास की एक धर्मशाला में पहुँचे। वहाँ की रसोई से उन्होंने भोजन लिया और एक पेड़ की छाया में बैठकर खाने लगे। दोनों ने ही आँख बचाकर एक-दूसरे के भोजन में ज़हर मिला दिया था। कुछ ही देर में दोनों मर गये।

कृष्णचंद्र ने कहानी समाप्त की और अपने शिष्यों से कहा, "श्यामल और पुजारी पहले इतने ख़तरनाक आदमी नहीं थे। पर उनका मन दुर्बल था इसलिए उनके भीतर अल्प मात्रा में आरंभ हुआ पतन दो दिन के अन्दर उनके सर्वनाश का कारण बन गया।"

सभी विद्यार्थी भारी हृदय लेकर वहाँ से चले गये। लेकिन नरेंद्र आँखों में आँसू भर कर वहीं खड़ा रहा, फिर कृष्णचंद्र को प्रणाम करके बोला, "आचार्यवर, आपके सचेत करने से मैं अपने पतन को समझ गया हूँ। लेकिन अब भविष्य में कभी ऐसा नहीं होगा। मैं ऊपर उठूँगा। मैं आपको वचन देता हूँ। मेरी बात पर विश्वास कीजिए !"

नरेंद्र के चले जाने के बाद कृष्णचंद्र की पत्नी सुशीला ने अपनी आँखों से आँसू पोंछते हुए कहा, "नरेंद्र तो सुधर गया है, पर श्यामल और पुजारी को भाग्य हीनता ने उन्हें सुधरने का मौक़ा

नहीं दिया ।"

कृष्णचंद्र ने मुस्करा कर कहा, "पुजारी तो अवश्य भाग्यहीन था, पर श्यामल नहीं !"

"यह तुम क्या कहते हो ?" सुशीला ने विस्मित होकर पूछा ।

"सुशीला, पुजारी तो वृद्धावस्था के कारण विष के प्रभाव को सहन नहीं कर सका, इसलिए तुरन्त मर गया । श्यामल जवान था, काफ़ी देर तक जीवन-मृत्यु के बीच संघर्ष करता रहा, तभी एक महान आयुर्वेदाचार्य ऋषितुल्य व्यक्ति उधर से निकले । उन्होंने अपनी औषधि से उसके प्राण बचाये । जब श्यामल ने अपनी सारी कहानी उन धर्मात्मा पुरुष को सुनायी तो उन्होंने उसके प्रति किसी भी तरह की ग्लानि नहीं दिखायी और उसकी सत्यवादिता पर प्रसन्न होकर उसे ज्ञान-दान दिया ।"

सुशीला बोली, "श्यामल एक दिन की अवधि में दो प्राणियों की मृत्यु का कारण बना । उसके पापों का कुछ प्रायश्चित हो जाता तो न्याय-संगत होता !"

"श्यामल का प्रायश्चित हुआ है । आयुर्वेदाचार्य ने श्यामल को अपना शिष्य बनाया, लेकिन उसे एक वर्ष तक गुरुकुल में प्रवेश करने की अनुमति नहीं दी । उसने एक वर्ष तक पास की एक अंधेरी गुफ़ा में निवास किया और शीत-ताप सहकर कठिन तपस्या की । वह स्वयं भी बुद्धिमान था । उन महात्मा की कृपा से ज्ञानार्जन करके कालान्तर में कृष्णचंद्र बन गया ।" आचार्य ने पत्नी से कहा ।

"तो क्या आप ही श्यामल थे ?" सुशीला चकित होकर बोली, फिर एक क्षण रुक कर उसने पूछा, "उस रत्नहार का क्या हुआ ?"

"वह तो उसी समय राजा को अर्पित कर दिया गया था । अपने आचार्य के प्रभाव के कारण मैं दंड पाने से मुक्त हो गया । मैं पतन के गड्ढे में गिरकर नष्ट हो जाता, इससे पहले ही एक महात्मा के स्पर्श ने मुझे उबार लिया, विद्यादान देकर यशस्वी बनाया । यह मेरे पुनर्जन्म की कहानी है ।" कृष्णचंद्र ने गहरी साँस लेकर कहा ।

परिवर्तन

गजपतिनगर में एक दम्पति रहते थे— गोकुलदास और गौरी। गोकुलदास ग़रीब था और गाँव के किसानों के यहाँ मज़दूरी करके किसी तरह अपनी गृहस्थी चलाता था। गौरी कोई काम नहीं करती थी, बल्कि उसका सारा दिन पास-पड़ोस की औरतों से लड़ने-झगड़ने में बीतता था। वह जानबूझकर दूसरों के काम में दख़ल देती, उनकी निन्दा करती।

गौरी इतनी तुनक मिज़ाज थी कि गोकुलदास भी डर के कारण उसे कुछ नहीं कह पाता था।

एक दिन गौरी ने अपनी भैंस यों ही खुली छोड़ दी। भैंस पड़ोसी रंगनाथ के पिछवाड़े में घुस गयी और साग-सब्जी के सारे पौधे चर डाले। नुक़सान होने पर भी रंगनाथ गौरी की गाली-गलौज से डर कर चुप रह गया। फिर भी उसने मन ही मन इस बात का निश्चय किया कि गौरी को उचित सबक़ सिखाना चाहिए। उसने अपने पिछवाड़े में इस बार सब्जी न बोकर ज़हरीली पत्तियोंवाले पौधे रोंप दिये।

ज़हरीली पौध तेज़ी से बढ़ने लगी। पत्तों की चिकनी हरियाली देख गौरी के मन में लालच आ गया। बिना यह जाने कि वह अपनी भैंस को अपने हाथों मौत के मुँह में ढकेल रही है, उसने रात के समय उसे रंगनाथ के पीछे के बाड़े में हाँक दिया। जैसा कि रंगनाथ ने सोचा था, भैंस ने खूब छक कर वह हरी पौध खायी और सुबह तक प्राण छोड़ दिये।

दो वक्त भरी बालटी दूध देनेवाली भैंस के मरने से गौरी दुखी हो उठी। उसने अपने पति गोकुलदास से कहा, "अब मैं इस गाँव में नहीं रह सकती। अच्छी ख़ासी हमारी भैंस थी, लोगों ने मंत्र-तंत्र फूँक कर उसे मार डाला। हमारे सुख-चैन को देख सब हमसे जलते हैं।"

"गौरी, अब जो होना था, सो हो गया। हमारे चिल्लाने अथवा शोर मचाने से अब क्या फ़ायदा है?" गोकुलदास ने शांत स्वर में कहा।

गोकुलदास

पति की बातों से गौरी शांत न हुई, और भी उत्तेजित होकर बोली, "यह गाँव नहीं, मसान है। कल सवेरे ही हम यहाँ से चले जायेंगे। मेरे पीहर में तुम्हें कोई न कोई काम मिल ही जायेगा।"

गोकुल गौरी की बात का विरोध न कर सका। दूसरे दिन सुबह ही सुबह उठकर गोकुल अपनी पत्नी को लेकर उसके पीहर रामपुर के लिए निकल पड़ा। जब ये दोनों अपने गाँव के तालाब के पास से गुज़र रहे थे तो इन्होंने रमाकांत मछुआरे को मछलियां पकड़ते देखा। उस वक्त वह एक मछली को काँटे से निकाल कर टोकरी में डाल रहा था।

गौरी को यह दृश्य देखकर बड़ा अचरज हुआ। वह दांतों तले उंगली दबाकर बोली, "इस रमाकांत को हाथ-पैर मारे बग़ैर तालाब की मेंड पर बैठे-बैठे ये मछलियां मिल जाती हैं और इन्हें यह मनमाने दामों पर बेच देता है। आओ, ज़रा पूछें, बालिशत भर की इस मछली का क्या दाम बोलता है?" यह कहकर गौरी ने टोकरी में हाथ डाल दिया। उस टोकरी में मछलियों के साथ कुछ केकड़े भी थे। एक केकड़े ने गौरी की उंगली काट लिया।

गौरी पीड़ा से चीख उठी, फिर क्रुद्ध होकर बोली, "रमाकांत, तुम भी कैसे मछुआरे हो? केकड़े और मछलियों को क्या एक ही टोकरी में रखा जाता है?" वह गालियां बकने लगी।

मछुआरा रमाकांत गौरी के शांत होने तक चुप रहा, फिर बोला, "भाभी, ये केकड़े और मछलियां इसी तालाब से निकले हैं। जैसे ये पानी में मिल जुलकर रहते हैं, वैसे ही इस टोकरी में भी रहें। और मैं तो सच कहूँगा। अगर तालाब में ये मछलियां मुँह बन्द कर रहतीं और शिकार के लालच में न पड़तीं, तो आज इन्हें अपनी जान से हाथ न धोना पड़ता। तालाब में ये आराम से रहतीं।"

"अच्छा, अच्छा! तुम अपनी मछलियों की कहानी बंद करो। मेरी उंगली को केकड़े ने कैसा काटा है?" गौरी ने तमक कर कहा।

रमाकान्त मुस्करा कर बोला, "कुछ लोगों का स्वभाव ही ऐसा होता है कि वे दूसरों से छेड़खानी कर झगड़ा मोल ले लेते हैं। केकड़े का स्वभाव भी कुछ ऐसा ही है। वह चाहे पानी

में रहे या बाहर, उसका गुण बदलता नहीं। फिर भी मेरी बात सुनो, तुमने टोकरी में हाथ डालकर उसे उकसाया क्यों ?"

गोकुलदास अपने गाँव को छोड़ना नहीं चाहता था, केवल गौरी की बात रखने के लिए वह घर से निकल पड़ा था। अब उसे मौक़ा मिला तो उसने गौरी को समझाने के लिए कहा, "अपने रमाकांत भैया ने जो कहा, सत्य है। क्या तुमने उसकी बातों के मर्म को समझा? जब तक केकड़े की तरह हमारा स्वभाव है, हम चाहे गजपतिनगर में रहें या रामपुर में, हमें यही भुगतना पड़ेगा। तुमने केकड़े को छेड़ दिया, इसलिए उसने तुम्हारी उंगली में मुँह मार दिया। बोलो, यही हुआ है न ?"

"और नहीं तो क्या हुआ है ? देखो, अभी तक मेरी उंगली में दर्द है !" गौरी बोली।

रमाकांत की सारी बातों का मतलब है, "आप भला, जग भला।" इतने बरसों तक हम इस गाँव में रहे। हमारे झगड़े-फसाद दिन पर दिन बढ़ते ही गये। तुम क्या सोचती हो कि हम नये गाँव में जाकर शांति से अपने दिन काटेंगे ? सबसे पहले हमारे स्वभाव में परिवर्तन होना चाहिए।" गोकुलदास ने प्रेम से कहा।

पति की बात गौरी के अन्दर चली गयी। वह कुछ क्षण रुक कर बोली, "चलो, हम अपने ही गाँव में रहेंगे। शायद केकड़ा तो अपना स्वभाव नहीं बदल सकता। पर मनुष्य होने के नाते मैं अपना स्वभाव परिवर्तित करने का प्रयत्न करूँगी। आज से मैं सबके साथ स्नेहपूर्ण व्यवहार करूँगी। तुम मेरे इस परिवर्तन को इस क्षण से ही देखोगे।"

गौरी की बातें सुनकर गोकुलदास की खुशी का कोई ठिकाना न रहा। उसने गौरी के इस परिवर्तन पर भगवान को धन्यवाद दिया और खुशी-खुशी उसके साथ घर लौट पड़ा।

गोकुलदास के मन में पहले शंका थी कि शायद अपनी आदत की मजबूरी के कारण गौरी अपने स्वभाव को बदल ने सकेगी। पर गौरी ने अपने आचरण से सच्चा साबित किया।

काँसे का क़िला
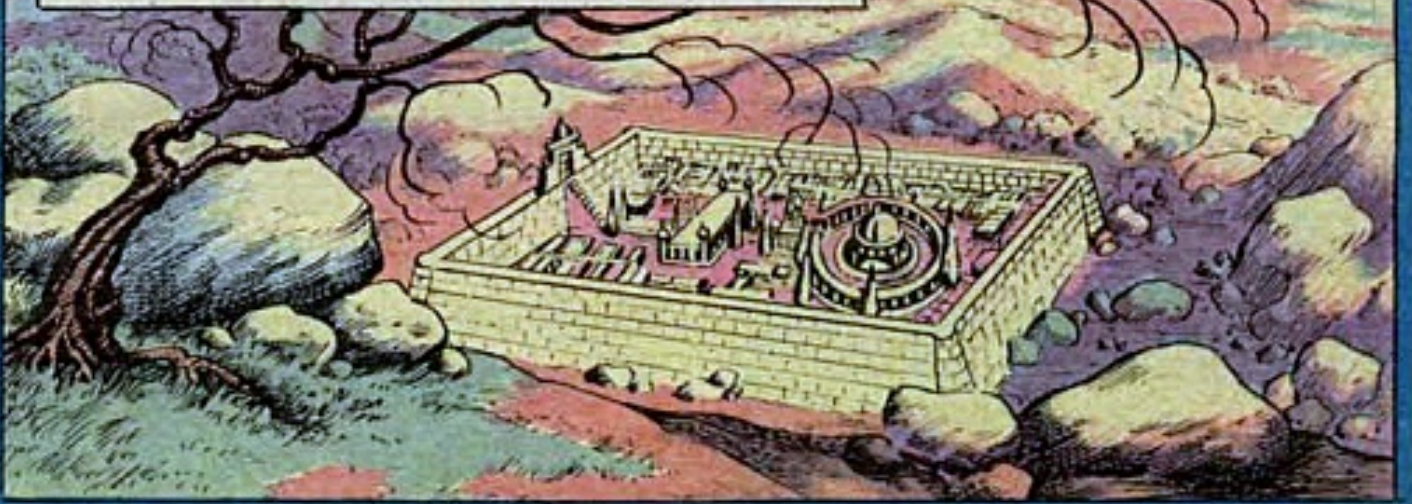
१४

[चंद्रवर्मा पहाड़ की तलहटी में झरने के पास बनी एक झोंपड़ी में पहुँचा। वहाँ उसकी मुलाक़ात एक बूढ़े से हुई। बूढ़े ने पहले तो उसे राजसैनिक समझा, फिर सारी सच्ची बात जानकर उसे बताया कि उसके पास एक नक़्शा है जिसमें काँसे के क़िले तक पहुँचने के मार्ग को अंकित किया गया है। अभी ये लोग बात कर ही रहे थे कि राजसैनिकों के आने की आहट सुनाई दी। बूढ़ा भागकर पेड़ों की ओट में छिप गया। आगे पढ़िये----]

चंद्रवर्मा को झोंपड़ी से बाहर आते देख राजसैनिक चकित रह गये। बूढ़े के बदले एक सुन्दर नवयुवक को सामने देख उनकी सारी आशाओं पर पानी फिर गया। वे बूढ़े की खोज में बहुत दिनों से भटक रहे थे। आज उसे हाथ में आया जान उन्होंने सोचा था कि उसे बन्दी बनाकर राजा के सामने उपस्थित करने पर वे मालामाल हो जायेंगे। बात सच भी थी। राजा ने उस बूढ़े को पकड़ कर लानेवालों के लिए इनामों की घोषणा की थी। पर बूढ़ा तो कहीं ग़ायब हो गया था और सामने खड़ा था यह युवक ।

सैनिकों ने चंद्रवर्मा से पूछा, "तुम कौन हो ? वह बूढ़ा कहाँ है ?" सैनिकों का नायक तलवार खींचकर लाल-पीली आँखों से चंद्रवर्मा को घूर रहा था ।

चंद्रवर्मा ने भी अपनी तलवार खींच ली और कड़कते स्वर में कहा, "मैं नहीं जानता,

तुम किस बूढ़े की बात कर रहे हो ! तुमने पूछा, "मैं कौन हूँ" तो अपना परिचय देने से पहले मैं यह जानना चाहता हूँ कि तुम लोग कौन हो ?"

चंद्रवर्मा के निर्भय होकर खड़े होने और म्यान से तलतार खींचने के ढंग को देख दल नायक ने समझ लिया कि सामने खड़ा व्यक्ति साधारण योद्धा नहीं है । वह अभी कुछ सोच-विचार ही कर रहा था कि चंद्रवर्मा ने कुछ नम्र होकर पूछा, "आप लोग मुझे बतायें कि आप किसके सैनिक हैं ? अगर आपमें से किसी ने भी मुझसे टक्कर लेने की कोशिश की तो उसका अन्त निश्चित है। आप देख ही रहे हैं— मेरे पीछे रक्षा के लिए झोंपड़ी की दीवार है। आप इकट्ठे मुझ पर आक्रमण नहीं कर सकते। एक-एक करके ही मुझसे लड़ना होगा । अगर आप मेरी तलवार का करिश्मा देखना चाहते हो तो लो, मेरी तलवार का वार बचाओ !" चंद्रवर्मा ने एक क़दम आगे बढ़ाया ।

दलनायक ने भलीभाँति समझ लिया कि चंद्रवर्मा की बात एक दम सच है। अगर उसके साथ लड़ाई छिड़ गयी तो वह एक-एक को यमलोक में भेज देगा। वह क्या मुँह लेकर राजा के पास जायेगा। उसने झुकना ही ठीक समझा और बड़े विनम्र भाव से कहा, "भद्र युवक, आप निश्चय ही वीर, पराक्रमी और महान योद्धा हैं । मैं भी एक योद्धा हूँ । हमारे बीच अनावश्यक युद्ध नहीं होना चाहिए। मैं अपने राजा की आज्ञा से इस बियाबान वन में एक बूढ़े की खोज कर रहा हूँ। हमें पूरा भरोसा था कि वह इस झोंपड़ी में होगा, पर उसके बदले अचानक आपसे भेंट होगयी। अब जो होना था सो हुआ, हम अपनी राह जाते हैं, आप अपनी राह जाइये !"

अपनी चाल को सफल होते देख चंद्रवर्मा मन ही मन प्रसन्न हुआ, पर प्रकट में वह वैसा ही कठोर बना रहा। उसने तीक्ष्ण स्वर में पूछा, "आप लोगों का राजा कौन है ?"

"क्या आप हमारे राजा का नाम नहीं जानते ? यह तो बड़े आश्चर्य की बात है कि आप एक राज्य की सीमा के अन्दर खड़े होकर भी उस राज्य के राजा का नाम नहीं जानते !" दलनायक ने कहा ।

नायक की बातें सुनकर चंद्रवर्मा हँस पड़ा और बोला, "मैं राज्य और उनकी सीमाओं को पहचानने एवं याद रखने की बात कभी की भूल चुका हूँ। मेरे गुरुदेव ने देह त्यागने से पूर्व मुझे एक राजा से मिलने का आदेश दिया था। उनका नाम शिवसिंह है। मैं उनसे मिलने के लिए ही देश के एक कोने से लेकर दूसरे कोने तक की यात्रा कर आया हूँ। इसी भटकन में तुम से मेरी मुलाक़ात हो गयी। ठीक है, अब आप अपने रास्ते जा सकते हैं।" यह कह कर चंद्रवर्मा झट से घूम पड़ा।

चंद्रवर्मा की बातें सुनकर न केवल सारे राज सैनिकों को बल्कि नायक को भी अपार आश्चर्य हुआ। उसने झोंपड़ी के अन्दर जाने का स्वांग रच रहे चंद्रवर्मा को रोक कर कहा, "भद्रयुवक, आप तो कोई अपूर्व पुरुष मालूम होते हैं। आपके गुरुदेव ने जिस राजा से मिलने के लिए आपसे कहा था, वे राजा शिवसिंह ही इस देश के राजा हैं।"

चंद्रवर्मा आश्चर्य प्रकट करता हुआ बोला, "अहा, मैं धन्य होगया हूँ। मेरा वर्षों का कठिन श्रम सफल होगया है। मैं यह सोचकर भयाकुल और निराश होगया था कि अपने गुरु के आदेश को पूरा न कर पाऊँगा। मुझे इसी समय राजा के दर्शन करने चाहिये।"

दल नायक ने अपने सैनिकों की तरफ़ भेदभरी दृष्टि डाली, फिर चंद्रवर्मा को बशंकित निगाह से देखता हुआ बोला, "भद्रयुवक, आपके गुरुदेव ने हमारे महाराज के दर्शन करने के लिए क्यों कहा था?"

"वह एक अद्भुत रहस्य है! देव-रहस्य से भी गुप्त है!" यह कहकर चंद्रवर्मा ने आसमान की तरफ़ सिर उठाकर देखा, फिर सबको सुनाते हुए उच्च स्वर में कहा, "ओह, काँसे का क़िला। अब तो तुम मेरी मुट्ठी में आगये हो न!"

"काँसे का क़िला"— इतना सुनते ही दलनायक चौंक पड़ा, फिर बोला, "भद्रयुवक, गुरुदेव जानते थे या अब केवल मैं जानता हूँ। पर तुम्हारे पूछने के ढंग से ऐसा लगता है कि इस बारे में तुम भी कुछ जानकारी रखते हो! यह तो बड़े आश्चर्य की बात है!" चंद्रवर्मा ने अपना विस्मय प्रकट किया।

आप काँसे कें क़िले के बारे में कुछ जानते हैं ?" "काँसे के क़िले के बारे में या तो मेरे

"इसमें आश्चर्य की क्या बात है ? कांसे के क़िले का रहस्य जानने के लिए ही तो हम इस जंगल में एक चालाक बूढ़े की खोज कर रहे हैं !" दलनायक बोला ।

चंद्रवर्मा ने अपनी दायीं हथेली खोली, फिर उस पर इस तरह दृष्टि गड़ायी, मानो कुछ पढ़ने की कोशिश कर रहा हो, क्षण भर बाद बोला, "अच्छा, अच्छा, अब मैं समझा ! तुम्हारे राजा को यह सन्देह है कि उस बूढ़े के पास काँसे के क़िले के मार्ग का नक़्शा है । मुझे यह भी मालूम हो गया है कि तुम्हारे राजा ने उस बूढ़े के पुत्र देवल को कारागार में डाल रखा है । मेरी बात सच है न ? वाह, तुम्हारे राजा तो बड़े भोलेभाले हैं !"

चंद्रवर्मा अब भी हथेली खोले खड़ा था । दलनायक ने उसकी तरफ विस्मय से देखकर कहा, "भद्रयुवक, आप तो सर्वज्ञ मालूम होते हैं । क्या आपकी हथेली ये सारे विवरण दे सकती है ? यह तो बड़ी अद्भुत बात है ।"

"अद्भुत किसके लिए ? आपके लिए या मेरे लिए ?" यह कहकर चंद्रवर्मा ने दलनायक की तरफ़ तीक्ष्ण दृष्टि से देखा, फिर बड़े आदेशभरे स्वर में बोला, "तुम लोग तुरन्त यहां से अपना घेरा हटाओ और टीले के पीछे वाले मैदान में मेरा इन्तज़ार करो ! मैं कुछ ही देर में तुम लोगों से आकर मिलता हूं। इसके बाद हम सब लोग तुरन्त महाराजा शिवसिंह से मिलने के लिए प्रस्थान करेंगे ।"

दलनायक को पक्का विश्वास होगया कि चंद्रवर्मा के अन्दर निश्चय ही अपूर्व शक्तियों का निवास है । उसने आज्ञापालन के स्वर में कहा, "हम आप के आदेशानुसार ऐसा ही करेंगे !" और अपने सैनिकदल के साथ वह टीले के पीछेवाले मैदान की ओर चल पड़ा । जब सब लोग आँखों से ओझल होगये, तो चंद्रवर्मा पेड़ों के झुरमुट के निकट गया और बोला, "जांबवन्त, तुम कहाँ हो ? बाहर आओ । मैंने सब बातें कर ली हैं, अब देवल के लिए भी कोई ख़तरा नहीं है । उसे तुम पूरी तरह सुरक्षित समझो ।"

चंद्रवर्मा की पुकार सुनकर बूढ़ा पेड़ों की ओट से बाहर आया और चंद्रवर्मा के पास आकर पूछने लगा, "क्यों भाई, यह जांबवन्त कौन है ?"

"तुम ही जांबवन्त हो ! क्या मैं तुम्हें 'ओ बूढ़े' कह कर पुकारता ? इसीलिए मैंने तुम्हें इस नाम से पुकारना उचित समझा । मैं राजा शिवसिंह के यहाँ जा रहा हूँ । मैं तुम्हारी शर्त के अनुसार तुम्हारे पुत्र को कारागार से मुक्त कराऊँगा और कांसे के क़िले में प्राप्त होनेवाली धनराशि में से हिस्सा भी दिलाऊँगा । पर तुम मुझे कांसे के क़िले के मार्ग का नक़्शा तो दो !" चंद्रवर्मा ने कहा ।

"क्या तुम पर विश्वास किया जा सकता है ?" बूढ़े ने शंकित स्वर में पूछा ।

"विश्वास न करके तुम्हें क्या मिलेगा ? विश्वास करोगे तो तुम्हारा और तुम्हारे पुत्र का भी भला होगा । जब मुझे इतना मालूम होगया है कि पश्चिमी समुद्र-तट पर कांसे का क़िला है, तब कभी न कभी वहां तक पहुँच जाना मेरे लिए कोई भारी समस्या नहीं है । समुद्र के क़िनारे आगे बढ़कर वहाँ तक पहुँचा जा सकता है । पर, मैं ऐसा सोचता हूं कि नक़्शा मिल जाने पर उसकी मदद से इस काम को बहुत आसानी से और कम समय में किया जा सकता है ! वरना समय भी ज़्यादा लगेगा और साथ ही अत्यधिक श्रम उठाना पड़ेगा । इन सबसे बढ़कर मानसिक तनाव बना रहेगा । दिन-रात यह शंका भी मन को कुरेदती रहेगी कि आख़िर हम वहाँ तक पहुँच पायेंगे या नहीं, अथवा हम रास्ता तो भटक नहीं रहे हैं । इस नक़्शे की मदद से निश्चय ही क़िले तक पहुँच सकते हैं !" चंद्रवर्मा ने कहा ।

चंद्रवर्मा की स्पष्टवादिता के सामने बूढ़ा कुछ कह न सका । उसने चुपचाप अपने वस्त्रों के अन्दर हाथ डाला और ताड़पत्रों के एक पुलिंदे को बाहर निकाला । वह उसे पंखे की तरह चक्राकार घुमाने लगा और चंद्रवर्मा को उसमें अंकित रेखाएं दिखाकर बोला, "देखो, कांसे के क़िले के मार्ग का नक़्शा !"

चंद्रवर्मा ने बड़े ध्यान से उस नक़्शे को देखा । उसमें पहाड़, जंगल, नदियां और

रेगिस्तानों को बड़े स्पष्ट रूप से अंकित किया गया था। समुद्र के एक ख़ास तट पर एक ऊँचा क़िला दीख रहा था। उस क़िले की चहारदीवारी के ऊपर से महलों की बुर्जियाँ झाँक रही थीं-ऐसा लगता था कि धुएँ जैसी किसी चीज़ ने उन बुर्जियों को घेर रखा है ।

उस नक़्शे को देखकर चंद्रवर्मा के मन में घबराहट-सी हुई । वह अपने भय को दबाकर मन ही मन सोचने लगा "क्या इन पहाड़ों, जंगलों, नदियों और रेगिस्तानों को पार कर कोई मानव इस काँसे के क़िले तक पहुँच सकता है ?"

"मेरे एक पूर्वज ने कांसे के इस क़िले का पता लगाया था । जब मैं बूढ़ा हो चला, तब मुझे यह नक़्शा मिला, वरना मैं अकेला ही वहाँ तक पहुँच कर दिखा देता ।" बूढ़ा बोला ।

बूढ़े की बातें सुनकर चंद्रवर्मा हँस पड़ा, बोला, "चलो, तुम तो बूढ़े होगये, पर मैं अभी जवान हूँ । मैं स्वयं काँसे के क़िले की खोज में जाऊँगा । तुम्हारे पुत्र देवल को भी अपने साथ ले जाऊँगा । मैं रुद्रपुर के राजा शिवसिंह से विस्तार से सारी बात करूँगा और हमारे वापस लौटने तक तुम आराम से रह सको, इसकी सारी व्यवस्था करवा दूँगा ।"

बूढ़े ने बड़ी अनिच्छा से उस नक़्शे को चंद्रवर्मा के हाथों में देकर कहा, "सुनो, विश्वासघात तो नहीं होगा न ? इसमें कोई धोखा तो नहीं है ? बूढ़े के साथ अगर छल हुआ तो वह महापाप होगा !"

"मैं तुम्हें और तुम्हारे पुत्र देवल को धोखा नहीं दूँगा । महाराजा शिवसिंह भी अगर सज्जन पुरुष हैं तो मैं उन्हें भी धोखा नहीं दूँगा । पर अगर इससे विपरीत हुआ तो---"

चंद्रवर्मा अभी अपनी बात समाप्त भी नहीं कर पाया था कि उसे घोड़े के हिनहिनाने का शब्द सुनाई दिया । उसने पेड़ों के बीच में से टीले की ओर दृष्टि दौड़ायी । दल नायक घोड़े पर सवार होकर टीले से झोंपड़ी की ओर उतर रहा था । उसे देख चंद्रवर्मा ने जल्दी से बूढ़े की ओर मुड़कर कहा, "मैं इस सैनिक दल के साथ रुद्रपुर जा रहा हूँ । वहाँ राजा शिवसिंह से मिलकर सब कुछ निर्णय लूँगा । तुम अभी

अपनी झोंपड़ी में ही रहना। मैं जल्दी ही तुम्हें बुलवाऊँगा और राजधानी में ही तुम्हारे रहने की व्यवस्था करूँगा। तुम निश्चिंत रहना। तुम्हारा शेष जीवन सुख से ही बीतेगा।" यह कहकर चंद्रवर्मा तेज़ी से दलनायक की तरफ़ बढ़ा।

चंद्रवर्मा को निकट आते देख दलनायक ने घोड़े से उतरकर कहा, "भद्रयुवक, आप को विलंब होता देख मैं कुछ चिंता में पड़ गया था। यह स्थान निरापद नहीं है। मैं यह घोड़ा आपके लिए ही लाया हूँ। आप जल्दी से इस पर सवार हो जाइये! मैंने राजधानी महाराज के पास समाचार भेज दिया है कि आप उनसे मिलने आ रहे हैं।"

"मैं कुछ शक्तियों का आवाहन करने के लिए बन में चला गया था। महाराजा शिवसिंह के बारे में किसी भी शक्ति ने अच्छी राय नहीं दी। क्या आपके राजा सचमुच ही दुष्ट प्रकृति के हैं?" चंद्रवर्मा ने बात बनायी।

"भद्रयुवक, राजा अच्छा है या दुष्ट है, यह बात भला उसके सेवक कैसे जान सकते हैं? यह बात तो प्रजा और पड़ोसी राजाओं को ज़्यादा अच्छी तरह मालूम होगी। हमारा स्वार्थ तो हर माह समय पर वेतन पाना है। जो राजा अपने कर्मचारियों को समय पर वेतन देता है, वह अच्छा राजा है और जो समय पर वेतन नहीं देता, वह बुरा राजा है। मैं तो बस इतना ही जानता हूँ।" दलनायक ने कहा।

दलनायक की बातें सुनकर चंद्रवर्मा समझ गया कि उसे शिवसिंह के साथ बड़ी कुशलता से पेश आना होगा। अगर उसे कांसे के क़िले तक पहुँचना है तो उसे एक छोटे से सैनिक दल की आवश्यकता होगी। वह दल उसे राजा शिवसिंह से ही प्राप्त करना है। कांसे के क़िले तक अकेले पहुँचने की बात सोचना आत्महत्या करने जैसा होगा। दुर्गम मार्ग है, अनेक ख़तरों का सामना करना होगा। यही कारण है कि कोई भी वहाँ तक जाने का साहस नहीं करता। पर राजा शिवसिंह से अंतरंग बातचीत करना, उन्हें अपना सच्चा हाल बताना ख़तरे से ख़ाली नहीं होगा। राजसैनिकों और दलनायक को उसने जिस तरह अपने मांत्रिक होने का विश्वास दिलाया है, इसी प्रकार राजा को भी इस बात का

विश्वास दिलाना होगा ।

"भद्रयुवक, अब हमें राजधानी के लिए प्रस्थान करना चाहिए ।" दलनायक ने चंद्रवर्मा की विचार धारा को भंग करते हुए घोड़ा उसकी बग़ल में खड़ा कर दिया । चंद्रवर्मा ने लगाम थामी और कूदकर घोड़े पर जा बैठा ।

वनमार्गों तथा पहाड़ी घाटियों में दो घंटे तक यात्रा करने के बाद चंद्रवर्मा सैनिकों एवं दलनायक के साथ रुद्रपुर पहुँचा । उसने देखा नगर-द्वार और राजपथ तोरणों से अलंकृत हैं । राजपथ के दोनों ओर नागरिक पंक्ति बांधे खड़े हैं ।

घोड़े पर सवार चंद्रवर्मा राजसैनिकों के बीच जैसे ही राजपथ पर पहुँचा, जनता ने तालियां बजाकर अपना हर्ष प्रकट किया और ज़ोर-ज़ोर से नारे लगाने लगे, "महामांत्रिक की जय !"

चंद्रवर्मा के स्वागत में ऐसी भारी तैयारियाँ देख पहले वह विस्मय में आ गया,फिर उसके मन में शंका हुई । ऐसा भव्य स्वागत का आयोजन राजाव महाराजाओं केलिए ही किया जाता है । लेकिन उस के अन्दर ऐसी कौन बात है जिस के वास्ते यह तैयारी की गयी ! साथ ही

जयनाद के शब्द सुनकर चंद्रवर्मा परेशान हो उठा । क्या वह मांत्रिक है ? यह तो बड़ा अजीब-सा मालूम होता है । तभी उसे दलनायक के साथ हुई अपनी बातचीत याद आगयी । उसने अपनी हथेली को परखकर देखा-फिर मुट्ठी बन्द कर सोचने लगा, उसने 'गुरुदेव' की कल्पना कर काँसे के क़िले के बारे में जो बातें कही थीं, वे सैनिकों और दलनायक को अद्भुत प्रतीत हुई थीं । इसके बाद उसने दलनायक से शक्तियों के आवाहन का प्रसंग भी छेड़ा था । शायद इसीलिए दलनायक ने राजा के पास इस बात की सूचना भेज दी होगी कि वह किसी महा मांत्रिक को लेकर नगर में आ रहा है । राजा शिवसिंह भी कम चालाक नहीं है । बहुत अधिक आदर-सत्कार दिखाकर उसे अपने वश में करने के लिए ही उसने इतना सब आडम्बर किया है । देखें, अब क्या होता है ?

(क्रमशः)

CHITRA

साकार सपने

दृढ़व्रती विक्रमार्क पेड़ के पास लौट आये। पेड़ से शव उतार कर कंधे पर डाल हमेशा की भाँति चुपचाप श्मशान की ओर चलने लगे। तब शव में वास करने वाले बेताल ने पूछा, "राजन्, आप इस भयानक स्थान में आधी रात के समय जो श्रम उठा रहे हैं, उससे मुझे ऐसा विश्वास होता है कि आप अनुपम शूरवीर हैं। लेकिन यह बात भी सत्य है कि कुछ महत्वपूर्ण काम ऐसे होते हैं, जिन्हें साधने के लिए शूरवीरता की अपेक्षा विवेक और सूझबूझ की अधिक आवश्यकता होती है। अनुभव, ज्ञान और विवेक के अभाव में कई बार साधा हुआ कार्य भी व्यर्थ साबित होता है। इसके दृष्टान्त के रूप में मैं आपको विशाख नाम के एक युवक की कहानी सुनाता हूँ। श्रम को भुलाने के लिए सुनिये!"

बेताल ने कहानी सुनाना आरंभ किया:

बहुत पहले की बात है, पाटलिपुत्र में

बेताल कथा

SANKAR

जयनन्द नाम का एक धनी व्यापारी रहता था। उसके घर में विशाख नाम का एक युवक भी रहता था। विशाख जयनन्द का दूर का रिश्तेदार था, बचपन में ही अनाथ हो जाने के कारण वह जयनन्द के आश्रय में आ गया था और अब मजबूरी में वहीं अपने दिन काटता था।

विशाख स्वभाव से बड़ा तेज और देखने में सुन्दर था। पर अपने दुर्भाग्य के कारण उसे जयनन्द के घर में एक सेवक की भाँति रहना पड़ता था। वह महत्वाकांक्षी था, अपनी बदक़िस्मती को मन ही मन कोसता हुआ कुढ़ता रहता था।

विशाख हमेशा यह सोचा करता था कि जयनन्द की तरह वह कब धन कुबेर बन सकता है! वह सदा हवा के महल बनाया करता और रात में विचित्र-विचित्र सपने देखा करता था।

एक दोपहर फुरसत के समय विशाख बैठा-बैठा ऊँघ रहा था। तभी उसने एक सपना देखा कि वह जयनन्द से भी बड़ा धन्ना सेठ बन गया है और जयनन्द अपनी सारी संपत्ति खोकर भिखारी हो गया है। जयनन्द अब उसकी चाकरी में है और नौकरों की तरह रहता है। सपने की खुमारी में विशाख ने बड़ी ज़ोर से पुकारा, "अरे जयनन्द, तू कहाँ मर गया? जल्दी इधर आ!"

दुर्भाग्य से जयनन्द उस समय विशाख के पास से होकर गुज़र रहा था। विशाख की बात सुनकर जयनन्द का पारा चढ़ गया। उसने विशाख को पीटकर अपने घर से निकाल दिया।

इस दृश्य को देख जयनन्द के परिवार के लोग, रिश्तेदार, दास-दासियां विशाख का मज़ाक उड़ाकर हँसने लगे। विशाख इस अपमान को सहन नहीं कर पाया। वह पाटलिपुत्र छोड़कर जंगल की तरफ़ चल पड़ा।

जंगल में बहुत दूर निकल जाने के बाद एक स्थान पर विशाख को तपोलीन एक मुनि दिखाई दिये। विशाख ने मुनि को दण्डवत् प्रणाम किया।

मुनि ने आँख खोलकर विशाख की तरफ़ दृष्टि डाली, फिर पूछा, "बेटा, मैं तुम्हारा क्या

उपकार कर सकता हूँ ?"

विशाख ने सारा वृत्तान्त सुनाकर कहा, "महात्मन्, आप मुझे ऐसी शक्ति प्रदान कीजिए कि जयनन्द मेरे पैरों पर गिर जाये !"

मुनि ने अपनी दिव्य दृष्टि से जयनन्द के जीवन का सारा हाल जान लिया, फिर विशाख से कहा, "वत्स, जयनन्द अपने परिश्रम और योग्यता के बल पर आगे बढ़ सका है। तुम बिना कोई मेहनत किये महाधनी बनने के सपने देख रहे हो ! जैसे नींद के समय सपने देखना सहज है, वैसे ही यथार्थ में उनका सच न होना भी सहज स्वाभाविक है। आज से तुम अपनी मेहनत के बल पर आगे बढ़ने का प्रयत्न करो !"

मुनि के मुख से बातें सुनकर विशाख को निराशा ने आ घेरा। फिर भी वह अपने को संभालकर बोला, "महात्मन्, आपने जो कुछ कहा, उसमें मुझे कोई नयी बात दिखाई नहीं देती। इतना तो सब जानते हैं। अगर आप में सचमुच ही किसी शक्ति का वास है तो मुझ पर इतना अनुग्रह कीजिये कि मेरे सपने सच हों !"

मुनि ने मुस्करा कर कहा, "यह तो कोई बड़ी बात नहीं। मैं तुम्हें एक मंत्र देता हूँ। तुम्हें जब भी अपने सपने को साकार करना हो, छह बार इस मंत्र का जाप अपने मन में करना और अंत में कहना कि तुम्हारा सपना सच निकले। तुम्हारा सपना निश्चय ही सच हो जायेगा !" मुनि ने विशाख को पास बुलाकर कान में मंत्रोपदेश दिया।

विशाख ने बड़ी प्रसन्नता से मुनि को प्रणाम किया और फिर जाने लगा। तब मुनि ने उसे रोककर कहा, "वत्स, मैं तुमसे एक बात कहना भूल गया। मेरा मंत्र केवल तीन बार ही काम देगा, इसके बाद यह व्यर्थ हो जायेगा, इसलिए तुम बड़ी सावधानी से इसका उपयोग करना। इस बात का ख्याल रखना कि इस मंत्र के द्वारा न केवल तुम्हारा, बल्कि और लोगों का भी उपकार होना चाहिए !"

विशाख जब वापस पाटलिपुत्र लौटा, अंधेरा हो चुका था। वह एक सराय के चबूतरे पर लेटकर मुनि की बतायी हुई बातों के बारे में सोचने लगा। थोड़ी ही देर में उसे नींद आ गयी।

उसने सपने में देखा कि जयनन्द ने न केवल उससे क्षमा माँगी, बल्कि उसके सामने अपनी बेटी के साथ विवाह करने का प्रस्ताव भी रखा।

विशाख चौंक कर जाग उठा। वह अपने सपने पर विचार करने लगा। ऐसे सपने देखना उसके लिए कोई नयी बात नहीं थी। मंत्र के प्रभाव की परीक्षा लेने के लिए इससे श्रेष्ठ सपना और क्या हो सकता था ? उसने अपने सपने को साकार करने के लिए मन में छह बार मुनि के दिये हुए मंत्र का जाप किया और सपने की पूर्णता के लिए कामना की। नींद की खुमारी में होने के कारण उसकी आँखें बन्द ही थीं। तभी उसे पास में ही कोई आहट सुनाई दी। वह उठ बैठा। उसके आश्चर्य की कोई सीमा न रही जब उसने देखा कि जयनन्द अपने परिवार और बाजों-गाजों के साथ उसके सामने खड़ा हुआ है।

विशाख अभी पूरे चेत में भी नहीं था कि जयनन्द उससे बोला, "बेटा, जो कुछ हुआ, उसे भूल जाओ ! कुछ ही देर पहले कुलदेवी ने सपने में मुझे दर्शन दिये और तुम्हारा पता देकर यह आदेश दिया कि तुम्हें आदरपूर्वक अपने घर लिवाकर लाऊँ और शुभमुहूर्त में कन्या-दान कर तुम्हें अपना दामाद बनाऊँ।"

पहले तो विशाख ने घर न लौटने का दिखावा किया। पर जब जयनन्द ने खूब खुशामद कर ली तो उसके साथ चल पड़ा। एक सप्ताह के अन्दर जयनन्द ने अपनी पुत्री मालिनी का विवाह विशाख के साथ खूब धूमधाम से संपन्न कर दिया।

विशाख अपने श्वशुर-गृह में सुखपूर्वक रहने लगा। अभी कुछ ही समय बीता था कि उसके सामने कुछ कठिनाइयां आने लगीं। जयनन्द के और कुटुम्बी चाह कर भी यह बात भूल नहीं पाये कि कुछ दिन पहले विशाख उनके घर में एक नौकर की हैसियत से रहता था। वे दामाद के रूप में विशाख का आदर नहीं कर पाये। दास-दासियों में भी कानाफूसी चलती रही। वे विशाख के भाग्य पर ईर्ष्या से भर गये और उसे द्वेषपूर्ण दृष्टि से देखने लगे।

जयनन्द ने भी घर के वातावरण को परखा। उसने विशाख को बुलाकर कहा, "बेटा, लोगों को यह समझाने के लिए कि तुम मेरे दामाद हो और मैं तुम्हारा ससुर हूँ, मैं तुम्हें धन देता हूँ। स्वयं व्यापार करो और एक दिन मुझसे बढ़कर धनवान बन कर दिखाओ!"

जयनन्द की बात को विशाख ने सहर्ष स्वीकार कर लिया। जयनन्द ने विशाख के लिए व्यापार सम्बन्धी सारा प्रबन्ध किया।

एक दिन विशाख ने अपनी पत्नी से कहा, "मालिनी, तुम्हारे पिता चाहते हैं कि मैं व्यापार करके बहुत बड़ा सेठ बन जाऊँ। मैं उनकी इस इच्छा को पूरा करने का उपाय जानता हूँ।"

मालिनी मुस्कराकर बोली, "आप ऐश्वर्यशाली होकर मेरे पिता की इच्छा को सफल बनायें, मेरे लिए इससे बढ़कर और क्या बात हो सकती है?"

उसी रात विशाख ने सपने में देखा कि उसका व्यापार फल-फूलकर चारों तरफ़ फैल गया है और तीन महीने की छोटी-सी अवधि में
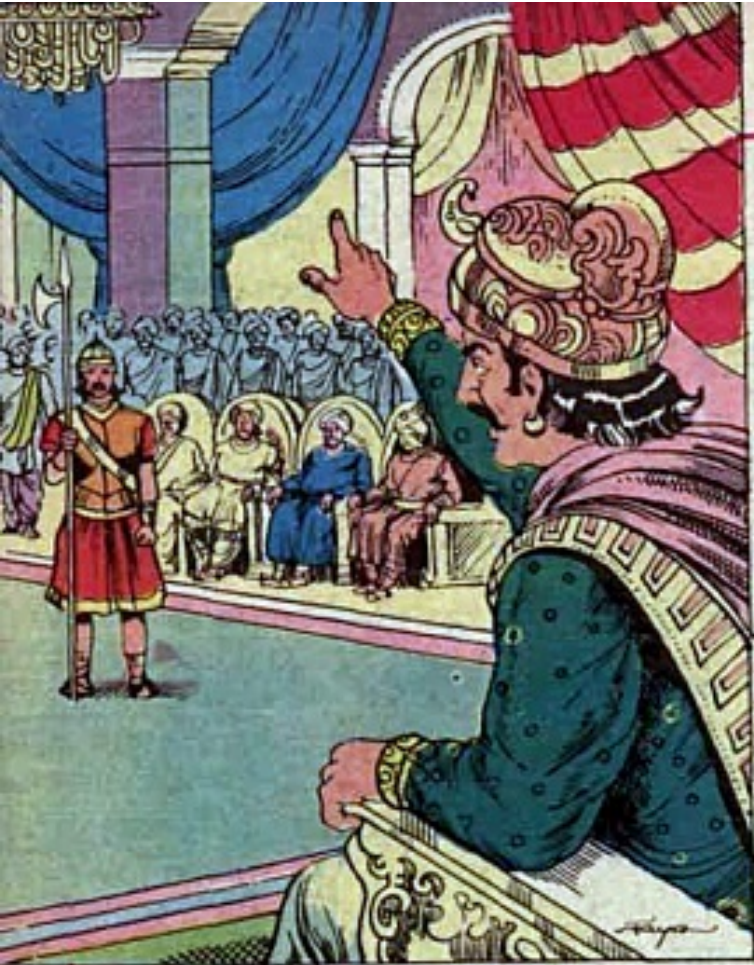
की ।

तीन महीनों के अन्दर विशाख का व्यापार खूब बढ़ा और वह पाटलिपुत्र के धनकुबेरों में से एक गिना जाने लगा। मालिनी को यह सब देख बड़ा आश्चर्य हुआ ।

विशाख बहुत कम अवधि में करोड़पति बना था, यह बात उसके लिए कुछ मुसीबतों का कारण बन गयी। प्रतिस्पर्धा रखनेवाले कुछ व्यापारियों ने विशाख के बारे में यह अफ़वाह फैलादी कि वह मिलावट की चीज़ें बेचता है और बहीख़ातों में गलत हिसाब लिखकर राजकर बचा लेता है। इस तरह वह राजा और प्रजा दोनों को धोखा दे रहा है ।

विशाख के बारे में ये सारी चर्चाएं राजा के कान में भी पहुँचीं । न्यायसभा में उन्होंने विशाख के ख़िलाफ़ सारे अभियोग सुने, फिर निर्णय देते हुए कहा, "क्योंकि तुमने अनुचित माध्यमों से इतना धन कमाया है और इस तरह राजा और प्रजा दोनों को धोखा दिया है, इसलिए दस दिन की निश्चित अवधि के अन्दर तुम सम्पूर्ण कर-राशि का दस गुना अधिक धन चुकाने के जिम्मेदार हो। अगर तुमने यह धन इस अवधि में न चुकाया तो तुम्हें सात वर्ष का कठोर कारावास दिया जायेगा ।"

विशाख को जीवन में पहली बार इतनी कठिन समस्या का सामना करना पड़ा । इस बीच उसके ससुर जयनन्द का भी देहान्त हो गया। अब कोई उसे उचित सलाह देनेवाला न

ही वह नगर के कुछ इने-गिने धनवानों में माना जाने लगा है ।

विशाख तुरन्त जाग उठा। उसने परमानन्दित होकर अपना सपना पत्नी मालिनी को सुनाया। सुनकर मालिनी निराशाभरे स्वर में बोली, "कोरे सपने देखने से कुछ नहीं होता। मेरे पिता ने धन कमाने के लिए जो श्रम किया था, उसकी कहानियां सारे पाटलिपुत्र के लोग जानते हैं।"

मालिनी की बात सुनकर विशाख ने उसे मुनि द्वारा प्राप्त मंत्र का वृत्तान्त सुनाया। पति की बात का मालिनी को विश्वास नहीं हुआ। वह इसे एक मनगढ़न्त कहानी समझ रही थी। तब विशाख ने छह बार मन में मंत्र का जाप किया और अपने सपने को सफल बनाने की कामना

रहा । राजा की दी हुई अवधि भी पूरी होने जा रही थी । विशाख का मन विकल हो उठा । उस रात उसने सपना देखा कि वह पाटलिपुत्र का राजा बन गया है और प्रतिस्पर्धा रखनेवाले ईर्ष्यालु व्यापारियों को कठिन दंड दिया है ।

विशाख ने मालिनी को यह सपना सुनाया तो वह खुशी में झूमकर बोली, "यह हमारा सौभाग्य है कि मुसीबत के इन दिनों में तुमने इतना सुन्दर सपना देखा है । अगर आप पाटलिपुत्र के राजा बन जाऐं तो हमारी सारी समस्याएं स्वयं ही हल हो जायेंगी । सपने को साकार करने के लिए आप तुरन्त मंत्र का जप कीजिये !"

विशाख का मन पत्नी की बातों में नहीं था । वह किसी चिंता में डूबा था । उसने मालिनी से कहा, "मुझे इसी समय वन में जाकर मुनि के दर्शन करने हैं ।" और वह तुरन्त निकल पड़ा

विशाख ने मुनि को दंडवत् प्रणाम किया और सारा वृत्तान्त सुनाकर कहा, "महात्मन्, मैं तीसरी बार उस मंत्र की शक्ति का उपयोग नहीं करना चाहता । आपने जो वर मुझे दिया है, वह वापस ले लीजिए । इस मंत्र की शक्ति को व्यर्थ कर दीजिए !"

मुनि ने मन्द-मन्द मुस्कराते हुए कहा, "मैं नहीं जानता था कि तुम्हारे अन्दर इतनी जल्दी ज्ञानोदय हो जायेगा । तुम्हारी इच्छानुसार मैंने मंत्र को अकारथ कर दिया है । अब तुम जा सकते हो !" उन्होंने विशाख को आशीर्वाद दे विदा किया ।

विशाख ने घर लौटकर अपनी सारी संपत्ति बेच दी । उससे प्राप्त धन से उसने राजकर चुकाया और बहुत थोड़ा सा धन लेकर अपनी पत्नी के साथ एक छोटे से शहर में पहुँचा । उसने छोटा-सा व्यापार शुरू किया । उससे उसे जो भी आमदनी हो जाती, वह संतुष्ट भाव से उसमें गुज़ारा करता । इस तरह वह निश्चिंत होकर अपने दिन बिताने लगा ।

बेताल ने कहानी समाप्त कर विक्रमार्क से कहा, "राजन्, विशाख अगर मंत्र जपकर अपने सपने को साकार होने के लिए प्रार्थना करता, तो वह राजा बन गया होता । उसने इतना सुन्दर मौक़ा हाथ से जाने दिया । क्या यह उसकी

मूर्खता नहीं थी ! राजा बनने के बाद वह अपने लिए झूठी अफ़वाहें फैलाने वाले लोगों का अंत कर सकता था और सारी समस्याओं से मुक्ति पा सकता था । पर उसने ऐसा नहीं किया । इतने बड़े अवसर को उसने जानबूझकर खो दिया । इसका कारण क्या है ? अगर आप इसका समाधान जानकर भी नहीं करेंगे तो आपका सिर फटकर टुकड़े-टुकड़े हो जायेगा ।''

था, लेकिन मूर्ख नहीं । जब सपने बिना किसी

विक्रमार्क ने कहा, ''विशाख महत्वाकांक्षी श्रम के सच होने लगते हैं तो मनुष्य को प्रतिकूल परिस्थितियों का सामना भी करना पड़ता है । सपने जब सपने ही बने रहते हैं, यथार्थ नहीं होते, तब स्थितियां ऐसी नहीं होतीं । मुझे ऐसा लगता है कि इसी तथ्य का बोध कराने के लिए मुनि ने विशाख को वर दिया था । अपनी योग्यता के कारण नहीं, बल्कि वर के प्रभाव से विशाख धनवान की पुत्री से विवाह कर सका और जयनन्द के रिश्तेदारों की अवज्ञा और दास-दासियों की ईर्ष्या का पात्र बन गया । इसी प्रकार व्यापार में किसी भी प्रकार के अनुभव के बिना वह श्रम के बग़ैर ही करोड़पति बन गया और साथी व्यापारियों के द्वेष का पात्र बन राजदंड से भयभीत रहने लगा । इन अनुभवों से विशाख ने समझ लिया कि मुनि के वर के रूप में मिला हुआ मंत्र केवल सपनों को साकार कर सकता है, उनके दुष्परिणामों का सामना करने में किसी प्रकार की मदद नहीं कर सकता । इन बातों से वह इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि राज्य-शासन के अनुभव के बिना उसके राजा बन जाने पर किस प्रकार की विपदाएं सामने आयेंगी । वह अफवाह फैलानेवाले व्यापारियों को तो दंड दे देगा, लेकिन जनता की समस्याओं को हल करने और उसकी रक्षा करने में पूरी तरह असफल हो जायेगा । यही सब सोचकर विशाख वन में मुनि के पास गया और मंत्र में निहित शक्ति को व्यर्थ कर देने का निवेदन किया ।''

राजा के इसप्रकार मौन भंग होते ही बेताल शव के साथ अदृश्य होकर पेड़ पर जा बैठा ।

(कल्पित)

हमारे मन्दिर

काशी

काशी विश्व के प्राचीनतम नगरों में एक मानी जाती है। काशी का अर्थ है प्रकाशमान स्थल अथवा काश पुष्पों से भरा हुआ प्रदेश। गंगा की उपनदियों- वरुणा और असि के बीच बसा होने के कारण काशी को वाराणसी भी कहते हैं।

VEERA

काशी विश्वनाथ अर्थात् शिव की नगरी मानी जाती है, इसीलिए संपूर्ण भारत के पवित्र तीर्थों में इसका विशिष्ट स्थान है। यहाँ विश्वनाथ का मंदिर अत्यन्त प्राचीन है। यह बात आज भी अज्ञात है कि सर्वप्रथम इस शिवालय का निर्माण किसने कराया था!
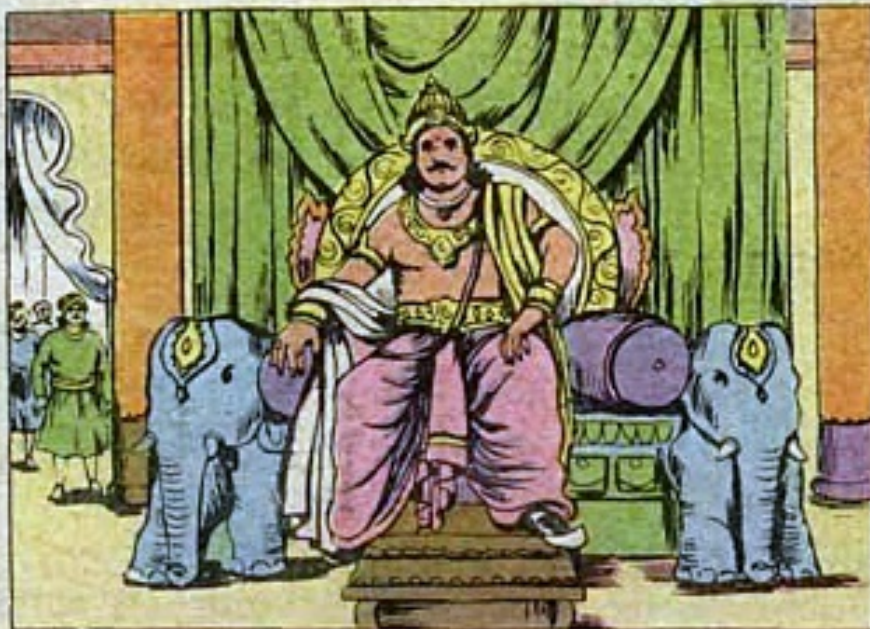
ऐसी कथा चली आ रही है कि पुरातन काल में काशी पर राजा दिवोदास का शासन था। राजा दिवोदास प्रजा के कल्याण को ही अपना लक्ष्य मानकर राज्य का संचालन करते थे। जन-कल्याण में उनका मन इतना रमा था, कि वे शिव के प्रति श्रद्धा-भक्ति की बात ही भूल गये थे। राजसभा के प्रमुख पुरोहितों ने भी इस भूल की ओर राजा का ध्यान आकृष्ट नहीं किया था।
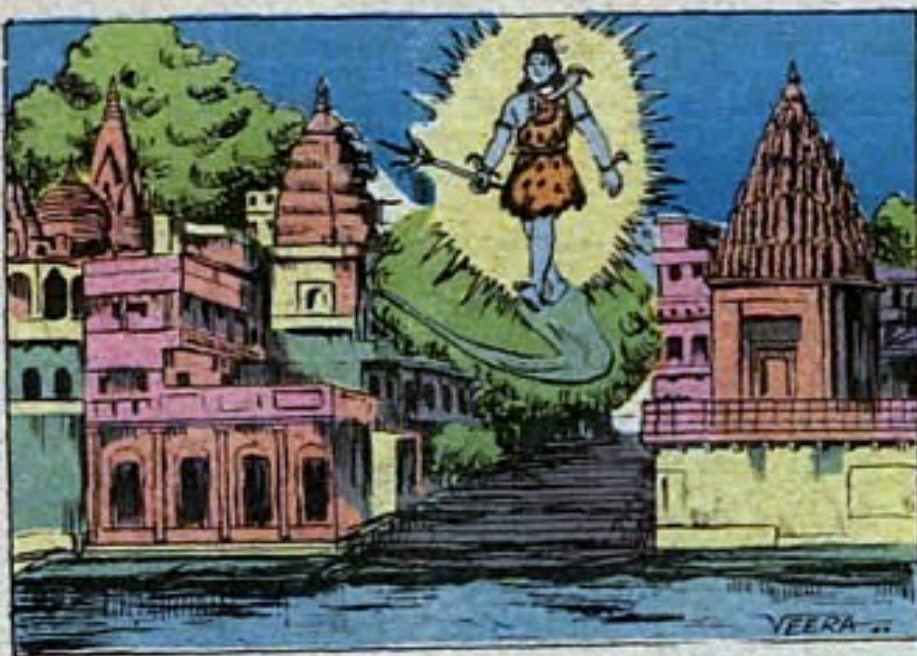
राजा दिवोदास की इस उपेक्षा से रुष्ट होकर भगवान शिव काशी नगरी को छोड़कर चले गये। यह बात शिवभक्तों के अलावा अन्य किसी के भी ध्यान में नहीं आयी। राजा पूर्ववत् प्रजा के कल्याणकारी कार्यों में लगे रहे।

कुछ काल बीतने पर शिव के मन में यह जिज्ञासा जागृत हुई कि उनकी अनुपस्थिति में काशी की दशा कैसी है! उन्होंने नगर का हाल जानने के लिए अपने कुछ गणों को काशी में भेजा। रुद्रगण नगर की शोभा पर मुग्ध होकर गंगा के तट पर ही रह गये।
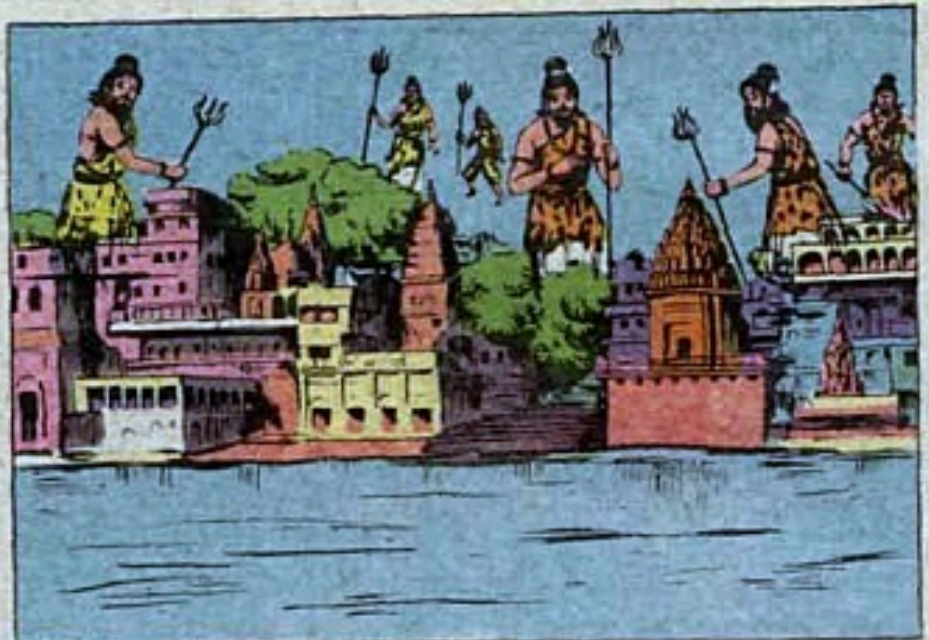
कुछ दिन और बीते तो विष्णु भगवान एक ब्राह्मण का वेश धरकर राजा दिवोदास से मिले और बोले, "राजन्, मनुष्य के लिए इतना ही पर्याप्त नहीं है कि वह उत्तम आचरण करता हुआ जीवन व्यतीत कर दे। उसके अंदर आध्यात्मिक चिंतन और भक्तिभाव भी होना चाहिए! मेरी राय है, आप भगवान शिव का ध्यान करें!"

राजा दिवोदास अपने आध्यात्मिक कर्त्तव्य के बारे में जागरूक हुए। उन्होंने एक विशाल मन्दिर का निर्माण कराया और उसमें शिवलिंग की प्रतिष्ठा की। राजा के इस आचरण से शिव अत्यन्त प्रसन्न हुए और पुनः काशी को अपना आवास बनाया।

काल-प्रवाह में प्राचीन शिव-मंदिर लुप्त हो गया। इस समय काशी में जो शिव मंदिर है, उसका निर्माण इन्दौर की रानी अहल्याबाई ने कराया था। इस मन्दिर के कलश पर पंजाब के राजा रणजीत सिंह ने सोने का पानी चढ़वाया था।

विश्वनाथ अथवा विश्वेश्वर नाम से प्रसिद्ध इस मन्दिर में दर्शन करने के लिए देश के चारों ओर से भक्तों का आगमन होता है। भगवान शिव को अर्पित विशेष पर्व के दिनों में इस मन्दिर में विशेष पूजा-अनुष्ठान होते हैं।
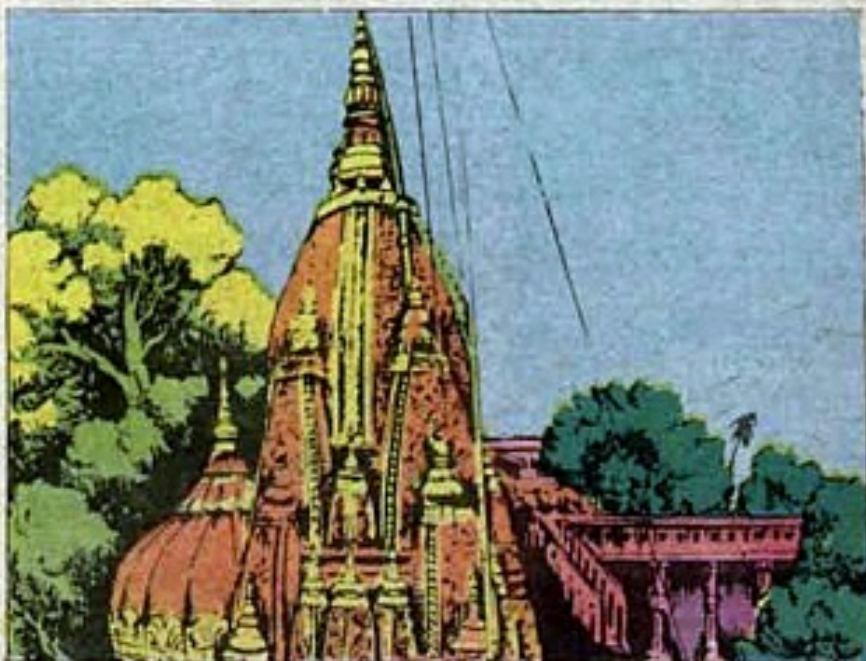
भक्त लोग वाराणसी की गंगा में स्नान करना अत्यन्त पवित्र मानते हैं। काशी में मृत्यु को प्राप्त होना, मृत व्यक्ति का दाह-संस्कार काशी में करना पुण्य माना जाता है। यहाँ की गंगा में लोग मृत व्यक्तियों के अस्थि-प्रवाह के लिए भी आते हैं।

हमारी अधिकांश पौराणिक कथाएँ काशी नगरी से जुड़ी हुई हैं। हरिश्चंद्र जिस समय श्मशान के चाण्डाल की सेवा में नियुक्त थे, उनकी पत्नी तारामती अपने मृत पुत्र को दाह-संस्कार के लिए यहीं पर लायी थी। वह स्थान हरिश्चंद्र घाट नाम से प्रसिद्ध है।

अनेक कालों में अनेक विभूतियों ने पवित्र काशी का दर्शन किया है। गौतम बुद्ध, आदिशंकर, रामानुज, कबीर, गुरु नानक, तुलसीदास, चैतन्य महाप्रभु अनेक महापुरुषों ने काशी की यात्रा की है। हज़ारों वर्षों का इतिहास रखने वाली काशी नगरी आज भी उतनी ही पवित्र और पूजनीय है।

प्रेम-ज्योति

राजा सोमचंद्र पोतनम नगर के शासक थे। उनकी रानी धारिणी पतिव्रता स्त्री थी। उनके एक पुत्र था— नाम था प्रसन्नचंद्र।

एक दिन रानी धारिणी अपने पति के बाल सँवार रही थी। राजा के सिर पर एक सफ़ेद बाल देखकर रानी ने परिहास में कुछ कहा।

बात राजा को लग गयी। उन्होंने कहा, "मैं अब राज्य नहीं करना चाहता। मुझे पहले ही राजकाज से मुक्त होकर वनवासी का जीवन व्यतीत करना चाहिए था। पर अब मैं विलंब नहीं करूँगा और वन में जाकर ऋषि-मुनियों का सा जीवन बिताते हुए तपस्या करूँगा।"

धारिणी अपने पति से अलग नहीं रह सकती थी। उसने कहा, "महाराज, अगर आप वन में जाने का निश्चय कर चुके हैं तो मैं भी आपके साथ चलूँगी।"

राजा सोमचंद्र ने युवराज प्रसन्नचंद्र का राज्याभिषेक किया और रानी धारिणी के साथ वन में जाकर तपस्या करने लगे। धारिणी उस समय गर्भवती थी। कुछ दिन बाद उसने एक पुत्र को जन्म दिया। राजा ने अपने इस पुत्र का नाम वल्कलचीरि रखा।

अभी साल भर भी नहीं बीता था कि रानी धारिणी का देहान्त हो गया। सोमचंद्र अपने पुत्र का लालन-पालन माता की तरह करने लगे। बालक कुछ बड़ा हुआ। जब से उसने होश संभाला, वह केवल मुनियों के संपर्क में ही रहा। आश्रम में रह कर उसने सारी विद्याएँ सीख लीं। सादगी, संयम आदि गुणों का अवलम्बन किया। इस प्रकार वह एक आदर्श युवक बन चुका था।

जब राजा प्रसन्नचंद्र को यह बात मालूम हुई कि उनके एक और भाई भी है और वह बनवासी जीवन व्यतीत कर रहे उनके पिता के पास पल रहा है तो उन्होंने उस किशोर वयस्क भाई को राजभवन में बुलवा लेने का निश्चय

जैन पुराण कथा

किया, ताकि उसे राजोचित शिक्षा दी जा सके।

इस काम के लिए प्रसन्नचंद्र ने कुछ नर्तकियों को नियुक्त किया। उन्हें मुनि-कन्याओं के समान वल्कल वस्त्र धारण करवाये गये। फल और मिठाइयों की टोकरियां उनके हाथ में देकर उनसे कहा गया, "वन में जाओ और वल्कलचीरि को आकर्षित करके अपने साथ राजभवन में लिवा लाओ !"

तापस वेशधारिणी नर्तकियाँ वन में पहुँचीं और वल्कलचीरि को एकांत में पाकर उससे मिलीं। उन्होंने उसे फल और मिठाइयाँ दीं। वल्कलचीरि ने उन्हें तपस्विनी स्त्रियाँ जानकर उनका सम्मान किया।

नर्तकियों ने मृदु स्वर में वल्कलचीरि से कहा, "हमारा आश्रम यहां से कुछ दूर पोतनम नामक स्थान पर है। हमारे आश्रम में सारी सुख-सुविधाएं हैं। तुम भी हमारे साथ चलो, प्रतिदिन इसी प्रकार का श्रेष्ठ आहार तुम्हें मिलेगा, और भी जो चाहोगे, सब प्राप्त होगा।"

सुन्दर कोमल नर्तकियों की मोहभरी बातें सुनकर वल्कलचीरि के मन में पोतनम आश्रम देखने की बड़ी प्रबल इच्छा हुई। किन्तु इसी बीच सोमचंद्र उधर आ निकले। उन्हें देखकर नर्तकियां वन में पेड़ों की ओट हो गयीं।

पिता के चले जाने के बाद वल्कलचीरि उन स्त्रियों को खोजता हुआ वन में कुछ दूर तक चला गया। उसने देखा, एक बैलगाड़ी घंटियों की टुन-टुन ध्वनि करती उधार से जा रही है। वल्कलचीरि ने गाड़ीवान से पूछा, "मुनिवर, पोतनम आश्रम जाने का रास्ता किधर से है ?"

गाड़ी में गाड़ीवान की स्त्री भी बैठी थी। वल्कलचीरि की बात सुनकर उसे हँसी आ गयी।

"पोतनम जाना चाहते हो तो गाड़ी में बैठे जाओ ! हम वहीं जा रहे हैं।" गाड़ीवान ने कहा।

वल्कलचीरि गाड़ी में जा बैठा। वह बराबर यही पूछता रहा, "पोतनम आश्रम में कौन ऋषि हैं ? कुटियों में कितने मुनि रहते हैं ? वहाँ मुनिकुमार कितने हैं ?" उसके भोलेपन पर गाड़ीवान और उसकी स्त्री हँसने लगे।

रास्ते में एक डाकू ने गाड़ी को रोक दिया। पर गाड़ीवान बड़ा साहसी था। उसने डाकू के सिर पर अपनी लाठी का प्रहार किया। डाकू नीचे गिर पड़ा। गाड़ीवान ने डाकू के धन को अपने कब्ज़े में लिया और गाड़ी को बड़ी तेज़ी से पोतनम नगर की ओर हाँक दिया।

गाड़ी पोतनम नगर पहुँची तो गाड़ीवान ने वल्कलचीरि से कहा, "बेटा, यही पोतनम आश्रम है। इस नगर में कुछ भी लेने के लिए तुम्हें धन की आवश्यकता पड़ेगी। लो, ये थोड़ी सी मुद्राएं रख लो!" यह कहकर गाड़ीवान ने वल्कलचीरि को कुछ धन दिया और गाड़ी हाँककर अपने रास्ते चला गया।

वल्कलचीरि पोतनम नगर को देखकर आश्चर्य चकित होगया। उसने स्वप्न में भी नहीं सोचा था कि आश्रम ऐसे भी हो सकते हैं। रास्ते में जो भी व्यक्ति उसके सामने से गुज़रता, वह उसे 'मुनि!' कहकर नमस्कार करता। इस तरह सारे मार्गों का चक्कर लगाता हुआ वह एक भवन के आँगन में पहुँचा। वह भवन पोतनम की राजनर्तकी का था।

वल्कलचीरि ने नर्तकी को देखकर कहा, "तपस्विनी जी, मुझे एक कुटी चाहिए!" उसने गाड़ीवान से प्राप्त पैसे राजनर्तकी के हाथ में रख दिये।

"अच्छा, बेटा!" यह कहकर राजनर्तकी ने उसे नये वस्त्र देकर स्नानगृह में भेज दिया। सेवकों ने उसे नहलाया और नये वस्त्र पहनाये। राजनर्तकी इस सुन्दर नवयुवक के साथ अपनी बेटी के विवाह की तैयारियां करने लगी। वल्कलचीरि ने किसी प्रकार की आपत्ति नहीं की और चुपचाप सारे निर्देशों का पालन करता रहा। पर विवाह के गीत सुनकर उसके मन में बड़ा आश्चर्य पैदा हुआ और मंगलवाद्यों की ध्वनि से वह डर गया।

इस बीच वन में गयी हुई नर्तकियां लौट आयीं और उन्होंने राजा प्रसन्नचंद्र से सारा हाल कह सुनाया। नर्तकियों के साथ अपने छोटे भाई को आया हुआ न देखकर राजा को बड़ी खिन्नता हुई। इधर राज परिसर में राजनर्तकी के घर बज रहे गाजे-बाजों से राजा और भी अप्रसन्न हो उठे। उन्होंने इस सारे कोलाहल के कारण को

जानना चाहा। नर्तकियों ने वल्कलचीरि को पहचान कर राजा से निवेदन किया, "महाराज, आपके छोटे भाई राजकुमार वल्कलचीरि को राजनर्तकी अपना दामाद बनाने जा रही है।"

प्रसन्नचंद्र ने तुरन्त अपने भाई को बुलवा लिया और वल्कलचीरि को एक राजभवन और अपने राज्य का थोड़ा सा हिस्सा देकर उसका विवाह एक सुन्दर राजकुमारी के साथ कर दिया।

इसके कुछ दिनों बाद एक घटना हुई। राजसेवकों ने ग़रीब गाड़ीवान के पास अचानक इतना धन देखकर उसे डाकू समझा और उसे पकड़कर राजा के सामने प्रस्तुत किया। राजदरबार में वल्कलचीरि भी उपस्थित था। उसने गाड़ीवान को पहचान कर राजा से सारा वृत्तान्त सुनाया और इस तरह गाड़ीवान छूट गया।

उधर सोमचंद्र पुत्र की याद में रो-रोकर अंधे हो चुके थे। अन्य मुनि उनकी देखभाल करते थे। जब मुनियों को वल्कलचीरि के राजभवन में सुखपूर्वक रहने की सूचना मिली तो उन्होंने सोमचंद्र को समझाया।

इधर वल्कलचीरि को राजभवन के सुखोप-भोगों के बीच रहते बारह वर्ष बीत गये थे। एक दिन उसे अपने वृद्ध पिता की याद आयी तो वह विकल हो उठा। वह पश्चात्ताप करने लगा और अपने पिता को देखने के लिए राजभवन से निकल पड़ा। राजा प्रसन्नचंद्र ने भी वल्कलचीरि का साथ दिया। दोनों भाई वन में प्रवेश कर आगे बढ़ने लगे। वल्कलचीरि मार्ग के सारे सुपरिचित स्थलों को बड़े भाई को दिखाने लगा। इस बीच सोमचंद्र ने यह समाचार सुना कि उनका खोया हुआ बेटा उनसे मिलने आ रहा है। साथ में बड़ा पुत्र प्रसन्नचंद्र भी है। पुत्र-प्रेम के कारण सोमचंद्र की आँखों से अविरल अश्रुधारा प्रवाहित होने लगी, जिस से उनकी खोयी हुई दृष्टि लौट आयी।

इस चमत्कार को देख वन के मुनियों ने कहा, "यह पुत्र-प्रेम की ज्योति है!"

शिव पुराण

भगवान शिव के रुद्रगणों और दानवों के बीच बहुत समय तक संग्राम होता रहा, फिर भी शंखचूड की सेनाएं थीं कि घटने का नाम नहीं ले रही थीं। शिव ने विस्मित होकर विष्णु का स्मरण किया और उनके आने पर पूछा, "इतने समय तक युद्ध ज़ारी रहने के बाद भी शंखचूड की सेनाएं ज्यों की त्यों हैं। इसका क्या कारण हो सकता है ?"

विष्णु ने कहा, "शंखचूड की पत्नी तुलसी पतिव्रता है। उसका पातिव्रत्य ही शंखचूड एवं उसकी सेनाओं की रक्षा कर रहा है। मैं तुलसी का पातिव्रत्य भंग करूँगा, तुम शंखचूड का संहार करो !"

विष्णु ने शंखचूड का रूप धारण किया और उसके भवन में जाकर तुलसी से बोले, "शिव से मेरा युद्ध होते बहुत समय बीत गया, पर अभी तक युद्ध का निर्णय नहीं हुआ। युद्ध तो ज़ारी है पर मैं कुछ देर के लिए तुम्हें देखने चला आया हूँ।"

तुलसी प्रसन्न हो उठी। उसने अपना श्रृंगार किया और पति रूप-धारी विष्णु के प्रति पत्नी जैसा आचरण किया।

तुलसी का पातिव्रत्य-भंग होते ही शंखचूड की सेनाएं नष्ट होने लगीं। शिव ने शंखचूड पर अपने त्रिशूल का प्रहार करके उसका वध कर दिया।

उस रात अपने पार्श्व में सोये विष्णु के स्वरूप को तुलसी ने अपनी आंखों से देखा, क्योंकि माया के द्वारा ग्रहण किया गया कोई भी रूप निद्रा-काल में स्थित नहीं रहता, वास्तविक रूप

ही प्रत्यक्ष रहता है । तुलसी को अत्यन्त पश्चात्ताप हुआ । उसने क्रुद्ध होकर विष्णु को शिला बन जाने का शाप दे दिया ।

"तुलसी, तुम गंडकी नदी के रूप में प्रवाहित होओगी और मैं शालिग्राम के रूप में शाश्वत काल तक उस नदी में निवास करूँगा । तुम्हारे नाम के लिए तुलसी के पौधे की सर्वत्र पूजा होगी ।" यह कहकर विष्णु तुलसी को अपने साथ गोलोक ले गये ।

शिलाद सालंकायन मुनि का पुत्र था, पर उसके अपनी कोई संतान न थी । पुत्र-प्राप्ति के लिए उसने तप करने का निश्चय किया । वह कैलास गया और शिव-पार्वती का ध्यान धर कठिन तप करने लगा । शिव-पार्वती प्रत्यक्ष हुए । शिलाद ने अपनी कामना का निवेदन किया । शिव-पार्वती ने कहा, "शिलाद, तुम्हारे भाग्य में संतति नहीं है, फिर भी तुम्हें एक पुत्र प्राप्त होगा ।"

शिलाद अपने आश्रम में लौट आया । जब कई वर्षों तक उसके कोई संतान न हुई तो उसने यज्ञ करने का संकल्प किया । जब यज्ञ-कुंड के लिए एक पवित्र स्थान को खोदा जा रहा था, तब उसमें से एक सुन्दर बालक प्रत्यक्ष हुआ । शिव-पार्वती ने पुत्र-प्राप्ति का जो वरदान दिया था, वह पूर्ण हुआ । शिलाद ने उस बालक का नामकरण संस्कार कर उसे 'नन्द' नाम दिया और बड़े लाड़-प्यार से उसे पालने लगा ।

एक दिन शिलाद के आश्रम में मित्र और वरुण नाम के दो मुनि आये । उन्होंने नन्द को अल्पायु कह कर शिलाद को दुख में डाल दिया ।

जब नन्द को अपने पिता के दुख का कारण ज्ञात हुआ तो वह केदार में जाकर शिव-पार्वती का ध्यान कर कठिन तप करने लगा । दीर्घकालीन तपस्या के बाद शिव-पार्वती प्रत्यक्ष हुए और नन्द से वर माँगने के लिए कहा ।

नन्द ने निवेदन किया, "पार्वती-परमेश्वर, मुझे ऐसा वरदान दीजिये कि मैं दीर्घायु होकर आपकी पूजा-अर्चना करूँ और जगत में यशस्वी होकर स्वयं भी पूजा का पात्र बनूँ !"

शिव-पार्वती ने उसे वांछित वरदान दिया और उसका नामकरण नन्दीश्वर किया । उन्होंने नन्द को गणाधिपत्य भी प्रदान किया । नन्द का अभिषेक करने के लिए शिव ने अपने जटाजूट

में स्थित गंगाजल का उपयोग किया। अभिषेक का वह जल त्रिस्त्रोत, जटोदक, स्वर्णोदक, जंबू और वृषध्वज—इन पाँच नामों से पाँच नदियों में प्रवाहित होने लगा ।

शिव-पार्वती अभिषेक के बाद नन्दीश्वर को अपने साथ कैलास में ले गये । नन्दीश्वर का विवाह मरुत की पुत्री सुकीर्ति के साथ हुआ । नन्दीश्वर के पितृ कुल के लोग शिव के आदेश को स्वीकार कर रुद्रगणों में मिल गये ।

सृष्टि के आदिकाल में त्रिमूर्ति ब्रह्मा, विष्णु और महेश का आविर्भाव हुआ। ब्रह्मा ने विष्णु तथा शिव से कहा, "मैं ही परब्रह्म हूँ। आप दोनों मेरी पूजा कीजिये !"

ब्रह्मा की बात सुनकर शिव ने रौद्र रूप धारण किया और बड़ी ज़ोर से हुंकार-ध्वनि की। उस हुंकार से एक भयानक आकृति वाले पुरुष का जन्म हुआ। उसके तीन आँखें थीं, गौरवर्ण देह थी और वह त्रिशूल आदि अनेक आयुध धारण किये हुए था। अपने डमरू की आवाज़ से दिशाओं को कँपाता हुआ वह प्रकट हुआ। उसने शिव से पूछा, "परमेश्वर, किस हेतु आपने मुझे आविर्भूत किया ? आज्ञा दीजिये, मैं आपकी क्या सेवा करूँ ?"

"तुम इस ब्रह्मा को दंड दो !" शिव ने आदेश दिया ।

उस भयंकर आकृतिवाले पुरुष ने ब्रह्मा के पाँच सिरों में से मध्य सिर को अपनी कनिष्ठा अंगुली के नख से काट कर फेंक दिया। वह सिर जहाँ गिरा, उस स्थान का नाम ब्रह्म कपाल है, और जिस स्थल पर ब्रह्मा का सिर काटा गया था, वह स्थल काशी है ।

ब्रह्मा को दंड देने के लिए जिस दैत्याकार पुरुष की सृष्टि शिव ने की थी, उसका काम उन्होंने कालभैरव रखा और उसे अपना अंगरक्षक नियुक्त किया ।

लेकिन ब्रह्महत्या का पाप भीषण रूप धारण कर कालभैरव का पीछा करने लगा। यह देख शिव ने कालभैरव से कहा, "कालभैरव, तुम इस ब्रह्महत्या के पाप से मुक्त होने के लिए तीर्थाटन करो और फिर काशी क्षेत्र में चले जाओ। वहाँ तुम्हें अवश्य ही इस पाप से मुक्ति मिल जायेगी ।"

शिव के आदेशानुसार कालभैरव ने तीर्थाटन

किया, फिर काशी क्षेत्र में पहुँचा । उसने गंगास्नान कर पवित्रता प्राप्त की और काशी का क्षेत्रपाल बनकर लोगों की पूजा पाने लगा ।

प्राचीन काल में व्याघ्रपाद नाम के एक तपस्वी मुनि थे । उनकी पत्नी का नाम विमला था । वे दोनों ही शिवभक्त थे । शिव की आराधना के परिणामस्वरूप उनके एक पुत्र हुआ । उन्होंने उसे उपमन्यु नाम दिया ।

विमला के माता-पिता कुछ दिनों के लिए अपनी पुत्री और दौहित्र को अपने घर ले गये । जब बालक उपमन्यु पाँच वर्ष का हो गया तो विमला अपने पुत्र के साथ पति-गृह लौट आयी ।

उपमन्यु ने एक दिन मां से कहा, "माँ, मुझे पीने के लिए दूध दो ।"

"बेटा, हम ग़रीब हैं, हमारे यहां दूध नहीं है। तुम्हारे नाना-मामा धनी हैं, इसीलिए तुम्हें वहाँ दूध-दही खाने के लिए मिलता रहा ।" विमला ने उदास होकर उपमन्यु से कहा ।

विमला ने सत्तू को पानी में घोल कर उपमन्यु को पिलाने की कोशिश की, पर उपमन्यु हिचकियां लेकर रोता ही रहा ।

पुत्र को इस तरह बिलखते देख विमला बोली, "मैंने तुम्हें समझाया कि हमारे पास गोधन नहीं है, हम गरीब हैं, फिर भी तुम नहीं सुनते और मेरी बात पर कान दिये बिना रो रहे हो । बोलो, मैं क्या करूँ ?"

"मां, हमारी ग़रीबी कैसे दूर हो सकती है ? तुम मुझे उपाय बताओ !" उपमन्यु ने पूछा ।

विमला उपमन्यु को उसके पिता मुनि व्याघ्रपाद के पास ले गयी और उनसे सारा वृत्तान्त कह सुनाया ।

व्याघ्रपाद मुनि ने उपमन्यु को शिव पंचाक्षरी मंत्र की दीक्षा दी और कहा, "बेटा, तुम कैलास पर्वत पर जाकर यह मंत्र जपो, शिव-पार्वती प्रत्यक्ष होकर तुम्हारी कामना पूर्ण करेंगे !"

उपमन्यु ने पिता की आज्ञा को शिरोधार्य किया और कैलास पर्वत पर पहुँचा । वह शिव पंचाक्षरी मंत्र का जाप करते हुए ध्यान मग्न हो गया ।

शिव विकृत रूप धारण कर उपमन्यु के पास आये और बोले, "इस निर्जन पार्वत्य प्रदेश में तुम अकेले हो । यहाँ क्रूर जन्तुओं का वास है,

वे तुम्हें पीड़ा पहुँचायेंगे। तुम अपने घर लौट जाओ !"

"मैंने आपकी सम्मति नहीं माँगी। शिव-पार्वती मेरी रक्षा करेंगे।" यह कहकर उपमन्यु पुनः ध्यानमग्न हो गया।

कुछ देर बाद उपमन्यु को ऐसा आभास हुआ कि एक बाघ दहाड़ता हुआ उस पर आक्रमण कर रहा है। पर उसने अपनी आँखें नहीं खोलीं।

बालक उपमन्यु की निष्ठा और पराक्रम शीलता पर शिव-पार्वती मुग्ध हो गये। वे प्रसन्न होकर प्रकट हुए और उन्होंने उपमन्यु से वर माँगने के लिए कहा।

उपमन्यु ने निवेदन किया, "परमेश्वर, आप पार्थिव लिंग के रूप में प्रतिदिन मेरी पूजा ग्रहण करें और मुझे समस्त ऐश्वर्य प्रदान करें !"

शिव-पार्वती ने उसकी मनोकामना पूरी की और उसे दोनों वर प्रदान किये। उपमन्यु वापस लौटकर तप-ऐश्वर्ययुक्त जीवन बिताने लगा।

आदिकाल में जब भी देव-दानवों के बीच युद्ध हुआ, उसमें देवता ही अधिक संख्या में मृत्यु को प्राप्त होते रहे। देवताओं ने मेरु-पर्वत पर जाकर भगवान विष्णु से प्रार्थना की, "प्रभु, हमें ऐसा वरदान दीजिये कि हम कभी मृत्यु को प्राप्त न हों।"

भगवान विष्णु ने कहा, "देवगणो, केवल अमृत-पान से ही तुम अमर हो सकते हो ! ऐसा करो, दानवों के साथ मिलकर सारी औषधियां क्षीरसागर में डाल दो और मंदराचल को दंड बनाकर क्षीरसागर का मंथन करो ! कुछ काल बाद क्षीरसागर से अमृत निकलेगा। तुम उसका सेवन करना। यही तुम्हारे अमर होने का एकमात्र उपाय है।"

देवगण विष्णु के पास से मंदराचल पर पहुँचे और उसे उखाड़ने का प्रयत्न करने लगे। जब वह हिला भी नहीं तो वे पुनः मेरुपर्वत पर आये और भगवान विष्णु का दर्शन कर बोले, "प्रभु, हमने पूरा प्रयत्न किया, लेकिन मंदराचल तो हिलने का नाम ही नहीं लेता, अब आप ही हमारा उद्धार कीजिये !"

चोर की चोरी

एक बार चार देहाती किसी काम से बगदाद शहर पहुँचे। वहाँ उन्होंने एक सराय में डेरा डाला और नहा-धोकर बाज़ार की तरफ़ रवाना हुए। तभी एक चोर मौक़ा पाकर सराय में घुसा और उन देहातियों के सूखने के लिए डाले गये पुराने वस्त्रों को चुरा ले गया।

चोर उन वस्त्रों को बेचने के लिए हाट में ले गया, पर पुराने होने के कारण उन वस्त्रों को किसी ने नहीं ख़रीदा। वह उन वस्त्रों को बगल में रखकर बैठ गया और सोचने लगा कि कोई न कोई तो उसके जाल में फँसेगा।

तभी एक बन्दर उछल-कूद करता हुआ उसके पास आया। चोर उसके हाव-भावों से अपना मनोरंजन करने लगा, इसी बीच बन्दर का मालिक चोर की बगल में रखे हुए वस्त्रों को पीछे से खिसका कर भाग गया। वह बन्दर का खेल दिखाने के बहाने से चोरियां करनेवाला एक और चोर था।

कुछ ही देर बाद पहले चोर ने बगल में निगाह डाली तो देखा कपड़ों की गठरी गायब है। वह अपने चोरी के धन को इस तरह चोरी जाते देख चिल्लाने लगा। भीड़ इकट्ठा हो गयी, पर वह दूसरा चोर तो वहां से कभी का चंपत हो गया था।

दूसरे दिन पहला चोर नगर के एक ख़ास हिस्से से गुज़र रहा था कि उसने देखा एक आदमी कपड़ों की एक पेटी लिये बैठा है और जोर-जोर से चिल्ला रहा है, "भाइयो, आइये, कपड़े के व्यापार में नुक़सान होने के कारण मैं अपनी दूकान उठा रहा हूँ और बचे हुए कपड़े को सस्ते में बेच रहा हूँ। जल्दी आइये, माल ख़रीदिये !"

पहले चोर को उन कपड़ों का मूल्य बहुत ही कम लगा। वह कपड़ों की पेटी पर बंधी रस्सी को खोलने लगा कि कपड़े का मुआयना कर ले। इस पर दूकानदार ने गुस्से में आकर कहा,

'अरब की रातों' से एक कहानी

"सुनो, पहले पैसा दो, ख़रीदने के बाद ही तुम इस पेटी को खोल सकते हो। मेरी क़िस्मत ख़राब थी कि मैं अपने कपड़े को कौड़ियों के दाम बेच रहा हूँ!"

पहले चोर को दूकानदार की बातें सच्ची लगीं। उसने सोचा, इस कपड़े को यहाँ सस्ते में ख़रीदकर कहीं और फ़ायदे में बेचा जा सकता है। उसने पैसा देकर कपड़े के व्यापारी से वस्त्रों की उस पेटी को ख़रीद लिया। व्यापारी तुरन्त वहां से नौ-दो-ग्यारह हो गया।

चोर ने पेटी पर बंधी रस्सी को खोला और पेटी के भीतर रखे कपड़ों को देखा तो हक्का-बक्का रह गया। ये वही कपड़े थे जो उसने पहले दिन सराय से चुराये थे। अपने को कपड़े का व्यापारी बताकर उस दूसरे चोर ने फिर से इस पहले चोर को दग़ा दिया था।

चोर का दिमाग चक्कर खा गया। सराय में जब उसने इन कपड़ों को चुराया था, तब उसके दिमाग़ में एक ही चिंता थी कि कहीं कोई उसे देख न ले। उन्हीं कपड़ों को जब दूसरे ने चुराया तो उसका दिल यह सोचकर बैठ गया कि उसकी सारी मेहनत धूल में मिल गयी। और अब उसने उन्हीं वस्त्रों को पैसा देकर ख़रीद लिया है।

चोर को अपने किये पर ग्लानि होने लगी। वह सोचने लगा, निश्चय ही उन देहातियों ने उसे शाप दिया होगा। छिः, इन वस्त्रों को अब साथ रखना ही गुनाह है, पता नहीं उसे और कितनी मुसीबत उठानी पड़ सकती है।

इन विचारों ने चोर के दिल में खलबली मचा दी। वह घबडा गया। सोचने लगा "अपराध और पाप का फल प्रत्येक व्यक्ति को भोगना पड़ता है। उससे कोई बच नहीं सकता मैं पाप का बोझ अपने सिर क्यों ढोता जाऊँ? इस से जल्दी पिण्ड छुड़ा लेना उत्तम होगा।"

इसके बाद उस चोर ने उन सारे वस्त्रों को एक गठरी में बांधा और अंधेरा होने के बाद उसी सराय में पहुँचा। भाग्य से वे देहाती चबूतरे पर ही सो रहे थे। उसने उस गठरी को देहातियों की बगल में रखा और उलटे पाँव भाग गया।

भगवान का ध्यान

श्रीपुर में एक अत्यन्त विद्वान पंडित रहता था। उसका नाम कृष्ण शास्त्री था। प्रति वर्ष नवरात्र में वह धार्मिक उत्सवों का आयोजन करता था और ग्रामवासियों को भगवान के ध्यान का उपदेश दिया करता था। वह जितना विद्वान था, उतना ही कुशल वक्ता भी था। उसके द्वारा आयोजित उत्सव की सभाओं में सभी ग्रामवासी बड़ी श्रद्धा से सम्मिलित होते थे। इस तरह पंडित कृष्णशास्त्री की सभाएं पूरी तरह सफल होती थीं।

कृष्णशास्त्री के हरिदास नाम का एक पुत्र था। उसने भी अपने पिता के समान समस्त शास्त्रों का अध्ययन किया और तत्व के मर्म को समझा। वह भी पिता की तरह विद्याप्रेमी था।

एक वर्ष नवरात्र के उत्सव में दो दिन की सभा और उसमें पंडित कृष्णशास्त्री की वक्तृताओं का कार्यक्रम बड़ी सफल तापूर्वक संपन्न हुआ। लेकिन तीसरे दिन अचानक कृष्णशास्त्री पर रोग का आक्रमण हुआ और वह सभा में न आ सका। उसने अपने पुत्र हरिदास को आगे के कार्यक्रमों को चलाने का भार सौंपा।

उस दिन मंच पर कृष्णशास्त्री के स्थान पर उसके पुत्र हरिदास को देखकर कई ग्रामवासी अपने-अपने घर जाने के लिए उठ खड़े हुए। तब हरिदास ने सभा में उपस्थित लोगों को संबोधित कर कहा, "भक्तजनो, अस्वस्थ हो जाने के कारण आज कृष्णशास्त्री सभा में नहीं आ पाये हैं। इसलिए मैं निवेदन करता हूं कि जो लोग श्रीकृष्ण शास्त्री का ध्यान करने आये हैं, वे सहर्ष चले जायें। पर जो भगवान का ध्यान करने आये हैं वे लोग अपने-अपने स्थान पर बैठ जायें।"

हरिदास का यह निवेदन सुनकर सब लोग चुपचाप बैठ गये।
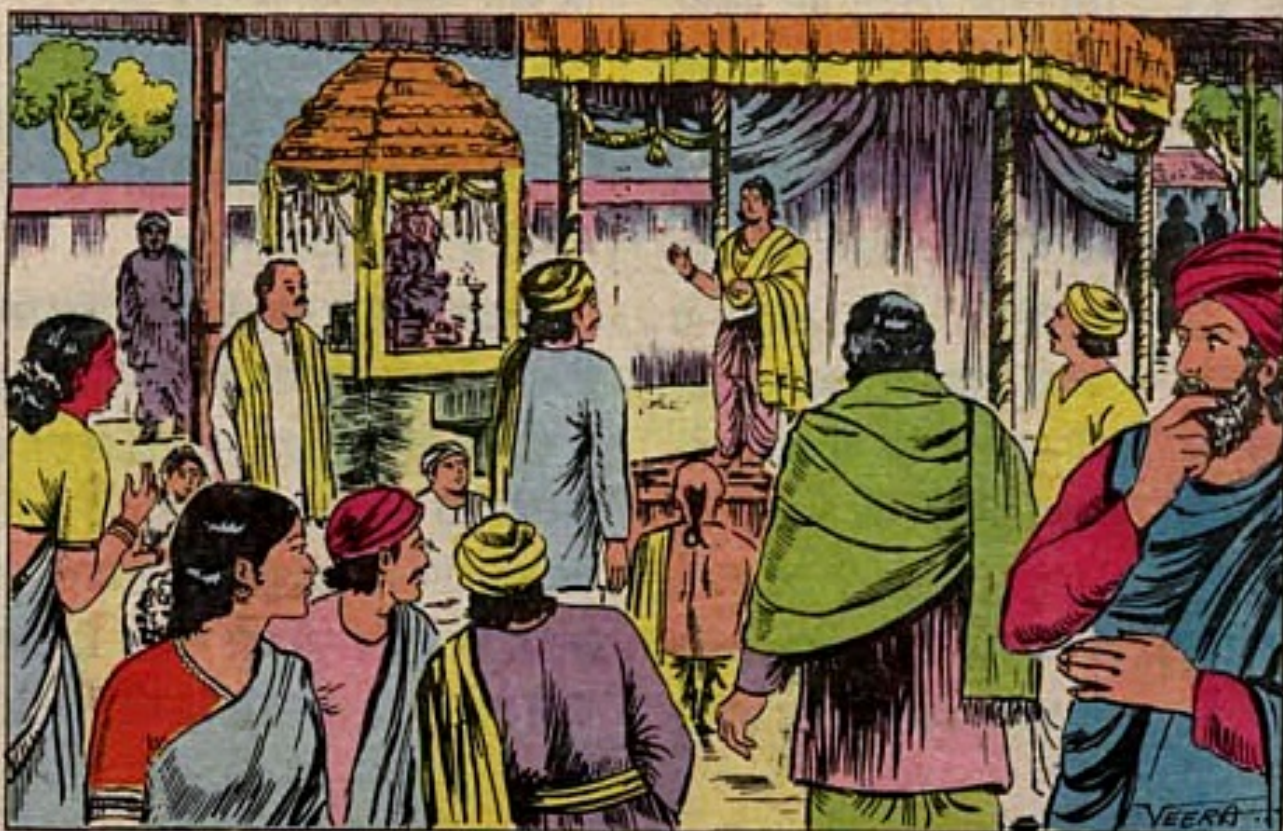
'पाखण्ड' का प्रताप

देवलसिंह सुपर्ण देश के राजा थे। उनकी पुत्री मोहना अनुपम सुंदरी थी। जैसी उसकी सुन्दरता थी, वैसा ही उसका अहंकार भी था। इस कारण उसका विवाह राजा के लिए एक समस्या बन गया था। राजकुमारी को जिस भी देश के राजकुमार का चित्र दिखाया जाता, वह उसमें कोई न कोई कमी निकाल कर कहती, "यह पुरुष रूप और गुण में मेरे अनुरूप नहीं है।"

एक दिन राजकुमारी मोहना सदा की भाँति उपवन में घूम रही थी कि अचानक कई डाकू उपवन में घुस आये। उनके सरदार ने राजकुमारी को अपने घोड़े पर बिठाया और सरपट घोड़ा दौड़ाते हुए उसे एक पहाड़ी इलाके में ले गया। वहाँ एक गुफ़ा में उन डाकुओं का अड्डा था।

उस गुफ़ा में डाकुओं का सरदार अपने परिवार के साथ रहता था। डाकुओं का सरदार राजकुमारी मोहना को इसी गुफ़ा में ले गया और अपना परिचय देते हुए बोला, "मेरा नाम पाखण्ड है। यह मेरी पत्नी पातकी है और यह चार वर्ष की लडकी मेरी बेटी रोता है। इनकी सेवा के लिए ये दो वृद्ध सेवक हैं और यह एक अधेड़ औरत है। मैं इस गुफा में अपने परिवार के साथ रहता हूँ। मेरा कोई भी अनुचर इस गुफ़ा के आस पास फटकने की हिम्मत नहीं कर सकता। तुम यहाँ निश्चिंत रह सकती हो!"

"पर तुम मुझे यहाँ लेकर क्यों आये हो?" मोहना ने क्रुद्ध होकर पूछा।

पाखण्ड ने शांत स्वर में कहा, "मेरी पत्नी के लिए यहाँ सभी सुविधाएं हैं। पर पहाड़ी इलाके में रहने के कारण उसका मन नहीं लगता। वह अक्सर मुझे तंग किया करती है। मैंने उसे कई बार समझाया कि वह मुझे तंग न किया करे, मैं उसकी हर इच्छा पूरी कर सकता हूँ, इस पर उसने अपनी यह कामना प्रकट की, 'तब तो तुम

इस देश की राजकुमारी को लाकर मेरी सेवा में नियुक्त करो !' इसलिए मैं तुम्हारा अपहरण कर तुम्हें यहाँ ले आया हूँ ।"

पाखण्ड की बात सुनकर मोहना सक़ते में आ गयी। उसने पाखण्ड की तरफ़ दृष्टि डाली । वह क़द में छह फुट लंबा था । उसकी देह की आभा सोने के रंग की थी । उसका चेहरा सुन्दर और तेजस्वी था तथा देह का गठन देखते ही बनता था । उसका पूरा व्यक्तित्व अत्यन्त प्रभावशाली था । पर उसकी पत्नी पातकी आकृति में उससे सर्वथा विपरीत थी । वह नाटी, काली, मोटी और विकृत थी । उसकी बेटी रोता पूरी तरह उसी की प्रतिकृति थी ।

पाखण्ड और मोहना के बीच यह वार्तालाप चल ही रहा था कि वहाँ पर उपस्थित वृद्ध सेवकों में से एक बोला, "अनुपम सुन्दरी राजकुमारी ने इस गुफ़ा में क़दम रखा है । सरदार ज़रूर इसके साथ विवाह करेंगे ।"

सेवक की बात सुनकर पाखण्ड क्रोधित हो उठा । सेवक के मुँह पर तमाचा मारकर बोला, "मूर्ख, मैं एक पत्नीव्रती हूँ । फिर कभी तुमने मुँह से ऐसी बात निकाली, तो याद रखना, तुम्हारी जुबान खींच लूँगा ।"

विवश होकर राजकुमारी मोहना को उस गुफ़ा में निवास करना पड़ा । शुरू में उसने पातकी की सेवा करने से इनकार कर दिया । पर जब अन्य सेवकों ने समझाया कि पातकी की सेवा न करने पर सरदार उसे और भी कठिन दंड दे सकता है तो वह संभल गयी और सारे काम काज करने लगी ।

वृद्ध सेवक दीपसिंह को राजकुमारी को काम करते देख बड़ी दया आती । एक बार उसे सांत्तवना देकर वह बोला, "तुम तो अप्सरा जैसी हो । कैसे तुम पर इतनी बड़ी विपदा आ गयी? यहाँ से तुम्हारे छूटने का बस एक ही उपाय है । तुम अपने रूप-सौन्दर्य से हमारे सरदार को आकृष्ट करो ! तुम्हीं उनके योग्य हो । उनके साथ विवाह हो जाने पर तुम्हारी सारी मुसीबतें दूर हो जायेंगी !"

"छिः, अपनी जुबान बंद करो ! क्या तुम नहीं जानते, मैं सुवर्ण देश की राजकुमारी हूँ ! क्या मैं एक डाकू से विवाह करूँगी ? तुम कैसी

मूर्खताभरी बात कर रहे हो ?" मोहना ने क्रोध में भरकर कहा ।

"यह सच है कि हमारे सरदार डाकू हैं । लेकिन इस संसार में कोई भी राजकुमार उनकी बराबरी नहीं कर सकता । चलो, शादी की बात छोड़ो । बस मेरे कहे अनुसार उन्हें आकर्षित करने की कोशिश करो ! वरना, तुम यहाँ से बाहर नहीं निकल सकतीं ।" दीपसिंह ने समझाया । लाचार होकर मोहना ने उसकी बात मान ली ।

एक दिन मोहना ने नहा-धोकर नये वस्त्र धारण किये । लाल रंग की साड़ी उसकी सुन्दरता में चार चाँद लगा रही थी । सज-धजकर वह पाखण्ड के सामने इधर-उधर फिरने लगी । पाखण्ड किसी गहरे सोच में था । इसलिए उसने उस ओर ध्यान नहीं दिया ।

थोड़ी देर बाद उसने मोहना की तरफ़ देखा और उसे अपने निकट आने का संकेत किया । उसके पास आने पर वह बोला, "तुम सुन्दर लगती हो, लेकिन नीले रंग के कपड़े पहनतीं तो तुम और भी सुन्दर लगतीं ।"

"तुम्हें कैसे मालूम ?" मोहना ने पूछा ।

"मेरी पत्नी ने बताया है । सुन्दरता के बारे में वह जैसी जानकारी रखती है, शायद ही कोई रखता हो !" पाखण्ड ने उत्तर दिया ।

पातकी का नाम बीच में आता देख मोहना को बड़ा गुस्सा आया । पर वह अपने क्रोध को पीकर चुप बनी रही । फिर एक दिन उसने नीले रंग के वस्त्र धारण किये और इधर-उधर टहलती हुई श्रीकृष्ण की बाल लीलाओं से सम्बन्धित एक गीत गाने लगी । उसका कंठस्वर अत्यन्त मधुर था ।

"तुम श्रीकृष्ण का यश मत गाओ । भगवान शिव की स्तुति में कोई गीत सुनाओ । तुम जानती नहीं, मेरी पत्नी शिव की आराधना करती है ?" पाखण्ड ने कहा ।

मोहना का चेहरा मुरझा गया ।

मोहना ने एक दिन पाखण्ड को प्रसन्न देखा तो वह उसे दिखाने के लिए नृत्य करने लगी । पाखण्ड नाराज़ होकर बोला, "मेरी पत्नी के कहने पर ही तुम नृत्य कर सकती हो, वैसे नहीं !"

कुछ समय और निकला। एक दिन मोहना ने पाखण्ड से पूछा, "तुम्हारे सेवक कह रहे थे कि तुम चोर-डाकुओं जैसे नहीं हो। क्षत्रिय राजकुमारों से बढ़कर तुम्हारा शौर्य और पराक्रम है। मैं भी तुम्हारा प्रताप देखना चाहती हूँ।"

"इसके लिए तो वन में चलना होगा! तुम्हें अपने साथ ले जाने के लिए मुझे अपनी पत्नी से अनुमति लेनी होगी। तुम ऐसा करो, उसे प्रसन्न करके उसकी अनुमति ले लो!" पाखण्ड ने कहा।

मोहना इन बातों की आदी हो गयी थी, इसलिए वह इस बार गुस्सा नहीं हुई। बल्कि पातकी के पास जाकर उसने अपनी इच्छा प्रकट की और नम्र शब्दों में कहा, "अगर तुम्हें यह भय न हो कि मैं अपने सौन्दर्य के प्रभाव से तुम्हारे पति को अपने अधीन कर लूँगी तो तुम मेरी यह इच्छा पूरी कर दो। मैं तुम्हारे पति का प्रताप देखना चाहती हूँ।"

पातकी मुस्करा कर बोली, "तुम हमारे प्रेम को समझ नहीं पाओगी। हमारा एक-दूसरे पर अखंड विश्वास है। तुम खुशी से उनके साथ वन में जा सकती हो!"

मोहना पाखण्ड के साथ वन में गयी। वहाँ पाखण्ड ने अपनी सारी विद्याओं का प्रदर्शन किया। उसकी अद्भुत कुशलता पर मोहना को अपार आश्चर्य हुआ।

एक स्थल पर एक विषैला नाग फण फैलाकर बैठा था। पाखण्ड ने उसकी पूँछ पकड़कर उसे पटका और फण को अपनी तलवार की मूँठ से कुचल दिया। उसने दौड़ते हुए हिरन पर सहस्रों बाण फेंककर उसे आहत किये बिना उन बाणों बने पिंजरे में क़ैद कर लिया और फिर पास जाकर मोहना को दिखाने लगा।

"देखो, मैं खूँख्वार तथा पालतू जानवरों को एक भी खरोंच लगाये बिना इसी तरह ज़िन्दा क़ैद कर लेता हूँ।" कहकर पाखण्ड ठहाका लगाकर हँसने लगा।

उसकी हँसी से उत्साहित होकर मोहना बोली, "तुम्हें तो किसी देश का राजकुमार होना चाहिए था। तुम्हारा प्रताप अनुपम है!"

"तुमने तो मेरी प्रशंसा की, लेकिन मेरा

यह उत्तर सुनकर मोहना का चेहरा क्रोध से लाल होगा। किसी तरह उसने अपने को नियंत्रण किया और बोली, "मैं अपूर्व सुन्दरी हूँ। इस सत्य से न केवल मैं, बल्कि अनेक देशों के अनेक राजकुमार परिचित हैं। मुझसे जिस भी राजकुमार ने विवाह का प्रस्ताव किया, मैंने उसका तिरस्कार किया। पति के सामने उसकी पत्नी के बारे में कुछ नहीं कहना चाहिए। फिर भी मैं यह कह रही हूँ। तुम्हारी पत्नी कुरूपा है। उसमें किसी तरह का उच्च संस्कार नहीं। फिर भी मुझे यह देखकर आश्चर्य होता है कि तुम उसके प्रति इतने आकृष्ट हो और मेरी उपेक्षा करते हो ?"

पाखण्ड ने मोहना की तरफ़ गहरी दृष्टि डाली, फिर मंद मुस्कराकर बोला, "मैं बाह्य सौन्दर्य की अपेक्षा आन्तरिक सौन्दर्य को अधिक महत्व देता हूँ। यही कारण है कि मैं अपनी पत्नी को इतना प्रेम करता हूँ।"

हृदय संतुष्ट नहीं है। मेरी पत्नी पातकी ने आज तक मेरे पराक्रम की प्रशंसा नहीं की। वह हमेशा यह कहकर मेरा मज़ाक उड़ाया करती है कि मैं अर्जुन की तरह पृथ्वी को बाण से भेदकर पाताल गंगा की धार को ऊपर नहीं ला सकता।" पाखण्ड ने गंभीर और चिंतित होकर कहा।

पाखण्ड के मन में अपनी पत्नी के प्रति इतना अधिक आदर-भाव देखकर मोहना असमंजस में पड़ गयी। उसने कुछ सहज होकर पाखण्ड से पूछा, "मैंने तुम्हारी विद्याओं का प्रदर्शन देखा। क्या तुम मेरी विद्याओं के प्रदर्शन को नहीं देखोगे ?"

"तुम्हारी विद्याओं का प्रदर्शन मैं अपनी पत्नी के साथ देखना चाहूँगा।" पाखण्ड बोला।

गुफ़ा में लौटने पर मोहना ने वृद्ध दीपसिंह को सारा हाल सुनाकर बड़ी निराशा से कहा, "मुझे यहाँ से बाहर निकलने का कोई मार्ग दिखाई नहीं देता।"

"अब तुम्हारे सामने एक ही मार्ग है। तुम हमारे सरदार की पत्नी को प्रसन्न करो ! वही तुम्हारी रक्षा कर सकती है।" दीपसिंह ने सुझाया और चुपके से एक उपाय भी मोहना को बता दिया।

दूसरा दिन हुआ। दीपसिंह ने पातकी के

चलने वाले रास्ते में केले के छिलके गिरा दिये। पातकी का पैर फिसल गया । वह गिरने ही वाली थी कि मोहना ने उसकी बाँह पकड़कर उसे संभाल लिया ।

पातकी अत्यन्त प्रसन्न होकर बोली, "तुम राजकुमारी होकर भी मेरे सेवकों से कहीं बढ़कर मेरी परवाह करती हो । मैंने तुम्हें यहाँ जिस लिए बुलाया है, उसका कारण कुछ और है । मैं तुम्हें स्वतंत्र करती हूँ । लेकिन मेरी एक शर्त है । तुम्हें मेरे पति को पहाड़ी गुफ़ाओं के जीवन से मुक्ति दिलानी होगी । हम लोग किसी नगर में सुखपूर्वक रहना चाहते हैं । बोलो, क्या तुम इतना कर सकती हो ?"

मोहना ने तुरन्त इस बात को स्वीकार कर लिया । राजभवन लौटने के लिए उसे बड़ी मुश्किल से यह अवसर मिला था ।

पातकी ने पति को पुकारा और पास आने पर कहा, "राजकुमारी मोहना को सावधानी से ले जाकर राजा के हाथों में सौंप दो ! यह अपने पिता से तुम्हारे सारे पुराने अपराधों को क्षमा करवा देगी । फिर हम किसी नगर में चलकर रहेंगे ।"

पाखण्ड ने मोहना को अपने घोड़े पर बैठाया और राजधानी पहुँचकर उसे राजभवन में ले गया । मोहना के आदेश पर राजसैनिकों ने पाखण्ड को बन्दी बनाने का प्रयत्न नहीं किया ।

इसके बाद पाखण्ड राजा देवलसिंह के सामने उपस्थित हुआ और उन्हें अभिवादन करके बोला, "महाराज, यह आपकी पुत्री है । किसी प्रयोजन को दृष्टि में रखकर मैंने राजकुमारी को कुछ समय तक अपने पास रखने की धृष्टता की है । बाकी विवरण आप स्वयं राजकुमारी के मुँह से सुन सकते हैं ।"

मोहना ने तत्काल अपने पिता की ओर उन्मुख होकर कहा, "पिताजी, यह युवक परम पराक्रमी और शूरवीर है । मैं इससे विवाह करना चाहती हूँ । आप इसे रोकिये।

राजकुमारी की बातें सुनकर पाखण्ड ने वहाँ से भागने का प्रयत्न किया, पर सैनिकों ने उसे चारों ओर से घेर लिया ।

राजा देवलसिंह ने पुत्री से कहा, "बेटी, बहुत दिनों बाद तुम विवाह के लिए तैयार हुई

हो। आज मैं अत्यन्त प्रसन्न हूँ। तुम चिन्ता मत करो !" यह कहकर राजा ने तुरन्त राजपुरोहित को बुलाया और अन्तःपुर में मंगलवाद्यों के बीच उसका विवाह संपन्न कर दिया ।

विवाह के बाद मोहना ने पाखण्ड से कहा, "यह विवाह तुम्हारी इच्छा के विरुद्ध हुआ है, तुम मुझे क्षमा करो। तुम डाकू हो, विवाहित भी हो। फिर भी, मैं प्रसन्न हूँ कि तुम मेरे पति हो। मेरा साथ पसन्द न हो तो तुम खुशी से जा सकते हो। पर मैं यह सोचकर तुम्हारा इन्तज़ार करती रहूँगी कि एक न एक दिन तुम अवश्य लौट आओगे ।" मोहना ने पाखण्ड का चरण-स्पर्श किया ।

पाखण्ड ने मोहना का हाथ पकड़कर उसे ऊपर उठाया और कहा, "अगर मैं यहाँ से गया तो तुम्हें साथ लेकर ही जाऊँगा। मोहना, जो कुछ तुमने देखा, वह कपट-नाटक है, झूठ है। सब राजकुमारों के प्रति तुम्हारी उपेक्षा देखकर तुम्हारे पिता ने मुझे चुना और तुम्हारे अहंकार को दूर कर तुम्हें विवाह के लिए तैयार करने का कार्यभार सौंपा। मेरा नाम शूरसेन है। मैं मगध देश का राजकुमार हूँ। गुफ़ा में तुमने जिन लोगों को भी देखा, वे हमारे द्वारा नियुक्त किये गये पात्र थे। मैं यह समझ गया था कि तुम्हारे प्रति मेरी उपेक्षा और लापरवाही ही तुम्हें मेरे प्रति आकर्षित कर सकती है। जो मैं कह रहा हूँ, वही सच है। बोलो, मेरे साथ मेरे मगध देश चलोगी ?"

यह सब सुनकर मोहना विस्मय में डूब गयी। कुछ देर मौन रह कर फिर धीरे से बोली, "किसी के द्वारा मान मिलने पर ही सुन्दरता का अपना मूल्य होता है। मनुष्य का सर्वश्रेष्ठ सौन्दर्य सदाशयता और विनयशीलता है। यह सत्य मैंने गुफ़ा में बिताये अपने कुछ दिनों के दौरान जान लिया है। मैं पत्नी के रूप में तुम्हारी सेवा करते हुए अपने को सुधारने का प्रयत्न करूँगी ।"

मोहना राजकुमार शूरसेन के साथ मगधदेश चली गयी। आदर्श दम्पति के रूप में बहुत काल तक उन्होंने सुखमय जीवन बिताया।
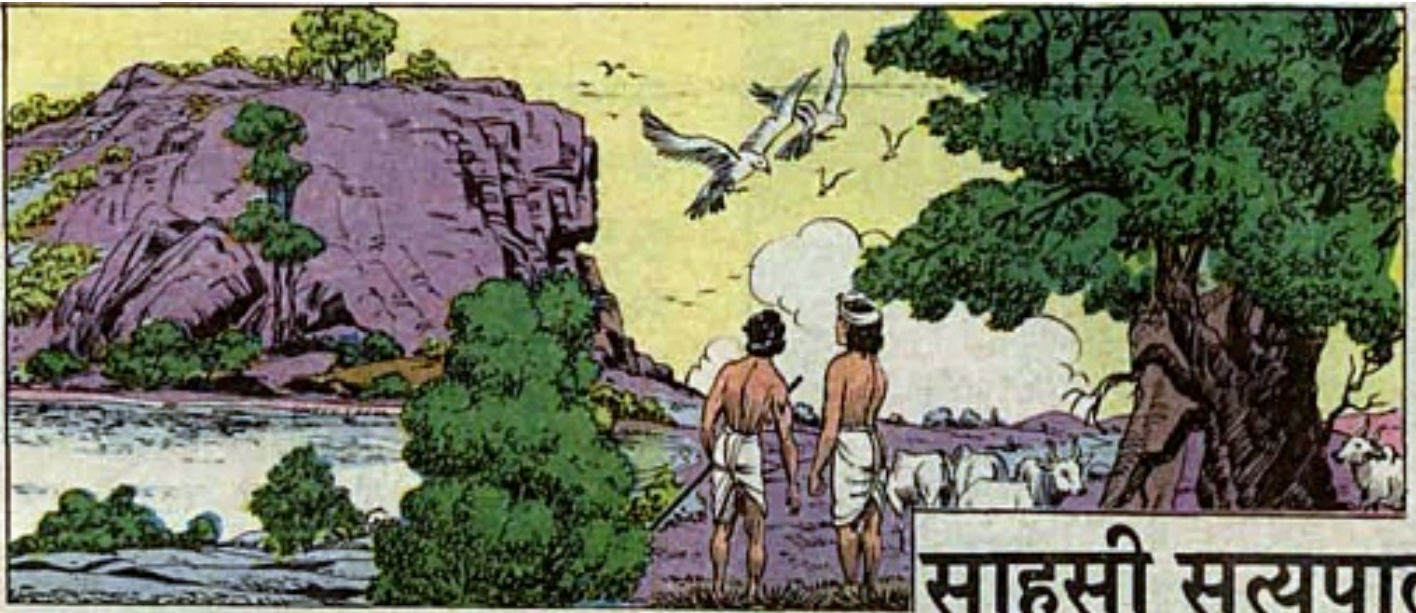
साहसी सत्यपाल

कोंकण के तटवर्ती पर्वतों में एक पर्वत भुतही पहाड़ नाम से प्रसिद्ध था। उस पहाड़ को लेकर सबके अन्दर ऐसा भय व्याप्त हो गया था कि उसकी तलहटी में गायें चरानेवाले चरवाहे अपनी गायों को उस पहाड़ से दूर ही रखते थे।

अगर कभी कोई गाय असावधानी के कारण उस पहाड़ पर चढ़ जाती तो कोई भी चरवाहा उसे नीचे हांक लाने का प्रयत्न नहीं करता था। पहले कभी, अपनी गाय को नीचे लाने के लिए जो भी चरवाहा ऊपर गया, वह लौट कर नहीं आया था, इसीलिए अब कोई भी वैसा साहस नहीं करता था।

भुतही पहाड़ पर गायों के झुंड थे। सवेरे ही सारी गायें गोशाला से बाहर निकल जातीं, सारा पहाड़ घूमकर घास चरतीं, फिर सूर्यास्त होने पर स्वयं ही गोशाला में लौट आतीं। उनके पीछे कोई हाँकनेवाला भी नहीं होता था। बाहरी दुनिया के लोगों को इस बात का कोई ज्ञान न था कि कौन उनकी देख रेख करता है; कौन उन्हें सानी देता है, कौन पानी? कौन उनका दूध दुहता है और उस दूध का क्या उपयोग होता है?

उस भुतही पहाड़ पर गोशाला के क़रीब ही एक चरवाहे की झोंपड़ी थी। प्रतिदिन शाम को उस झोंपड़ी के भीतर से इस तरह धुआँ निकलता था, मानो चूल्हा जल रहा हो। पर उस पहाड़ पर कभी किसी ने किसी मनुष्य को नहीं देखा था।

लोगों में यह अफ़वाह फैली हुई थी कि उस पहाड़ पर भूतों का वास है। वे मौक़ा पाकर आसपास के पहाड़ों पर चरनेवाली गायों को उठा ले जाते हैं और जब कोई चरवाहा अपनी गायों की खोज में उस पहाड़ पर क़दम रखता है तो वे उसे मार डालते हैं।

इसी भय के कारण उस भुतही पहाड़ पर

"चन्दामामा" में २५ वर्ष पूर्व प्रकाशित एक कहानी

किसी को पैर रखने का साहस नहीं होता था।

एक बार उस प्रदेश में सत्यपाल नाम का एक चरवाहा आया। सबने उसे भुतही पहाड़ के बारे में सावधान कर दिया। सत्यपाल युवक था, साहसी था, उसने लोगों के मुँह से सारी बातें सुनीं और स्वयं भी उस पहाड़ पर होने वाली गतिविधियों का निरीक्षण किया। सत्यपाल स्वभाव से ही निर्भीक था, उसके मन में यह इच्छा पैदा हुई कि भुतही पहाड़ पर जाकर उसके सारे रहस्य का पता लगाये।

सत्यपाल के निर्णय को सुनकर अन्य चरवाहों ने उसे इस दुस्साहस के ख़तरों को समझाया। पर सत्यपाल अपनी हठ का पक्का था। उसने उनकी बातों की परवाह नहीं की। जब सबने समझ लिया कि सत्यपाल माननेवाला नहीं है तो उन्होंने उसे आख़िरी सीख देते हुए कहा, "तुम भले ही पहाड़ पर चले जाओ, पर वहाँ की उस झोंपड़ी के अंदर मत जाना। आज तक जो भी उसके अन्दर गया, लौटकर नहीं आया। अगर तुमने अपनी हठ रखी और उसके अन्दर गये, तो तुम्हारी भी यही दशा होगी।"

सत्यपाल ने कोई जवाब नहीं दिया। उसे मालूम था कि उसे क्या करना है। अगले दिन सुबह-सुबह सत्यपाल ने भुतही पहाड़ की ओर प्रस्थान किया। पहाड़ पर पहुँचने के बाद उसने चारों तरफ़ दृष्टि डाली तो वह पहाड़ उसको अन्य पहाड़ों जैसा ही लगा। कहीं कोई भयानक या वीभत्स दृश्य दिखाई नहीं दिया। चारों ओर शांति और नीरवता का राज्य था। सत्यपाल हिम्मत करके झोंपड़ी की ओर बढ़ा। उसने पास जाकर अन्दर झाँका तो उसे ऐसा लगा कि इस झोंपड़ी के अन्दर मनुष्य का वास होना चाहिए।

सत्यपाल ने जोर से आवाज़ दी, "अन्दर कोई है?" पर भीतर से कोई उत्तर नहीं आया।

भय और संकोच त्याग सत्यपाल ने झोंपड़ी के अन्दर प्रवेश किया। एक ओर बर्तनों में तरह-तरह के ताज़े पकवान बने रखे थे। दूसरी ओर एक पलंग पड़ा था, जिस पर साफ़ सुन्दर बिछौना बिछा हुआ था।

सत्यपाल ने निष्कर्ष निकाला, "निश्चय ही

यहाँ पर मनुष्यों का वास है । शायद वे बाहर गये हुए हैं, इसलिए तब तक मुझे विश्राम करना चाहिए ।" यह सोचकर वह पलंग पर लेट गया ।

तभी उसे झोंपड़ी के बाहर आहट सुनाई दी । भीमाकार एक व्यक्ति भीतर आया और सीधे भोजन के पात्रों के पास जाकर बोला, "क्या पलंग पर सोये हुए मनुष्य के लिए भी रसोई बनी है ?" फिर सत्यपाल के पास आकर बोला, "उठो, खाना खायेंगे ।"

कोई दूसरा होता तो उस भूत को देख उसकी घिग्घी बंध जाती, मगर सत्यपाल नहीं डरा । बल्कि बड़े इतमीनान से बोला, "जो मेहनत करते हैं, उन्हीं को खाना चाहिए । मैंने तो कोई मेहनत नहीं की ।"

भूत चुपचाप बर्तनों के पास गया और पल भर में सारा खाना चट कर गया । इसके बाद उसने दीवार से सटे रखे फावड़ा एवं कुदाल उठाये और उन्हें सत्यपाल की ओर बढ़ाता हुआ बोला, "लो, इन्हें पकड़ो और पलंग से उतर कर तहख़ाने में मेरे साथ चलो !"

"तहख़ाने से मैं कोई चीज़ नहीं लाया हूँ, इसलिए मैं वहाँ तक कोई भी चीज़ उठाकर क्यों ले जाऊँ ?" सत्यपाल ने जवाब दिया ।

भूत ने फावड़ा-कुदाल कंधे पर रख लिये, फिर बोला, "तुम मेरे साथ चलो !"

"तुम आगे-आगे चलो, मैं तुम्हारे पीछे चलता हूँ ।" सत्यपाल ने कहा ।

इसके बाद दोनों तहख़ाने में पहुँचे । भूत ने सत्यपाल से कहा, "लो, इस कुदाल से यहाँ पर खोदो !"

"यहाँ मैंने कोई चीज़ गाड़कर नहीं रखी है, मैं क्यों खोदूँ ?" सत्यपाल ने जवाब दिया ।

भूत ने खोदना शुरू किया । थोड़ी देर में गड्ढे से एक हांडी निकल आयी ।

भूत ने कहा, "इसे ऊपर निकालो !"

"मैंने इसे नीचे नहीं उतारा था, ऐसी हालत में मैं क्यों इसे ऊपर निकालूँ ?" सत्यपाल ने कहा ।

भूत ने हांडी उठाकर ज़मीन पर रखी, फिर कहा, "तुम इसका ढक्कन खोल दो !"

"मैंने ढक्कन नहीं लगाया था, तब मैं क्यों खोलूँ ?" सत्यपाल बोला ।

भूत ने हाँडी का ढक्कन खोला तो उसके अन्दर स्वर्ण मुद्राएं भरी हुई थीं । भूत ने उन मुद्राओं को ज़मीन पर उंड़ेल दिया, फिर तीन ढेर बनाकर कहा, "इनमें से जो ढेर तुम्हारा हो, बता दो ! अगर तुमने ठीक ढेर बता दिया तो तुम्हारा उद्धार होगा और मैं भी शाप-मुक्त हो जाऊँगा । तुमने अगर भूल से किसी और ढेर को अपना कह दिया तो मैं तुम्हें राख कर दूँगा और तब तक इसी तरह अपने दिन बिताऊँगा, जब तक कि कोई मुझे शाप-मुक्त नहीं कर देता । अगर मैं तुम्हारे द्वारा शाप मुक्त हो गया तो इस धनराशि में से एक ढेर तुम्हारा होगा, दूसरा ग़रीबों का और तीसरा उन स्त्री-बच्चों का होगा, जिनके पति-पिता मेरे हाथ से मारे गये हैं । समझे ।"

सत्यपाल ने स्वर्ण मुद्राओं के उन तीनों ढेरों को अपने हाथों से गोल बनाया और कहा, "इन ढेरों में से एक मेरा है ।"

दूसरे ही क्षण झोंपड़ी में प्रकाश छा गया । ऐसा लगा, मानो बिजली कौंध गयी हो । भीमाकार भूत गायब हो गया । उसके स्थान पर गन्धर्व जैसा एक व्यक्ति खड़ा था । उसने सत्यपाल से कहा, "तुम्हारी कृपा से मैं शाप-मुक्त हो गया हूँ । मैं यहाँ से अब अपने लोक जाऊँगा । आज से यह पहाड़, यहाँ की गायें और यह सोना तुम्हारा है ।" इतना कहकर वह गन्धर्व अदृश्य हो गया ।

सत्यपाल उस पहाड़ से नीचे उतरा । उसे ज़िन्दा लौटते देख सारे चरवाहे आश्चर्यचकित हो गये । सत्यपाल ने उन्हें सारा वृत्तान्त कह सुनाया ।

सत्यपाल ने अब उसी पहाड़ को अपना निवास-स्थान बना लिया । उसने उस धनराशि में से काफ़ी धन गरीबों और मृत चरवाहों के कुटुम्बियों को दिया । शेष धन से उसने उस पर्वत पर चरागाहों, गोशालाओं और आवास-गृहों का निर्माण किया और सुखपूर्वक रहने लगा ।

कालान्तर में वह भुतही पहाड़ "गन्धर्व-पर्वत" के नाम से जाना जाने लगा ।

उड़नेवाली गिलहरियाँ

परिस्थितियों के परिवर्तन के अनुरूप जो पशु-पक्षी अपने को बदल लेते हैं, ऐसा देखा देखा जाता है कि वे बहुत काल तक जीवित रहते हैं। जो ऐसा नहीं कर पाते, कई बार उन पशु-पक्षियों की जाति ही नष्ट हो जाती है। जानवरों में परिवेश के अनुरूप बदल जाने की प्रकृति एवं शक्ति स्वाभाविक ही रहती है। इसका उदाहरण हम उड़ने वाली गिलहरियों से दे सकते हैं। यूरोप, उत्तरी एवं दक्षिणी अमरीका में जहाँ-तहाँ दिखाई देनेवाली ये गिलहरियाँ कुल सैंतीस प्रकार की हैं।

ये गिलहरियाँ ऊँची शाखाओं पर निवास करती हैं। हमला करने वाले पक्षियों से अपने को बचाने के लिए ये पंख की तरह के अपने पैरों को खोल लेती हैं। ये जमीन पर गिरे अनाज एवं फलों को चुनने के लिए भी पंखों जैसे अपने पैरों का इस्तेमाल करती हैं और उछलती हुई दाना चुनती हैं। अगले-पिछले पैरों को जोड़नेवाला इनका रोंयेदार चर्म उड़ने में पंखों जैसा काम देता है।

ये गिलहरियां उड़ने के पूर्व सिर उठाकर इधर-उधर देखती हैं, फिर अपने लक्ष्य का अन्दाज लगाकर आगे कूद पड़ती हैं। ज़मीन पर पहुँचे के पहले ये अपनी गुच्छे जैसी पूँछ को ऊपर उठाती हैं। पैरों को जोड़नेवाले चर्म के कारण ये साधारण गिलहरियों की अपेक्षा धीमी गति से चलती हैं। ये उड़ती भी बहुत धीमी गति से हैं। इनकी गति प्रति घंटा साढ़े छह किलो मीटर होती है।

ये गिलहरियां दिन भर डालों पर सोती रहती हैं और रात में खाने की खोज में निकलती हैं। रात में इनका रंग निवास बने वृक्षों की छाल के रंग जैसा हो जाता है।

फिलिप्पाइन्स तथा मलयेशिया में भी दो किस्म की इसी संतति की गिलहरियां पायी जाती हैं। ये बिल्लियों के परिमाण की होती हैं। इनके नाखून तेज़ होते हैं और दांत छोटे होने पर भी मज़बूत होते हैं।

आस्ट्रेलिया में इस जाति की गिलहरियां अपने बच्चों को कंगारू की तरह अपने पेट के निकट की थैली में ढोती हैं।

देखिए, किस तरह आप 50 रुपये तक बचा सकते हैं केवल 20 हैण्डीप्लास्ट पट्टियोंवाला एक पैक खरीद कर.

8 से भी कम रुपयों में अपने बच्चे में एक अच्छी आदत डालिए.

हैण्डीप्लास्ट की 20 पट्टियों के हर पैक के साथ एक पिगी बैंक मुफ्त मिलता है. इस आकर्षक बैंक में आपका बच्चा एक-एक रुपये वाले 50 सिक्के तक आसानी से बचा सकता है.

यह उपहार केवल बच्चे को प्रोत्साहन देने के लिए ही है. घर में नटखट शरारती बच्चे हों तो हैण्डीप्लास्ट भी रखना ही चाहिए. हैण्डीप्लास्ट में वही दवाइयाँ हैं जिनका इस्तेमाल ज़्यादातर डाक्टर ऑपरेशन बाद घाव भरने के लिए करते हैं. यही वजह है कि कटने-छिलने, फोड़े-फुंसियों तथा मामूली घावों के लिए हैण्डीप्लास्ट भरोसेमंद है.

स्टॉक सीमित है. जल्दी कीजिए. अपने पास की दुकान या केमिस्ट के यहाँ पहुँचिए और इस शानदार सुयोग का लाभ उठाइए.

Handyplast®

Handyplast strips

मुफ्त
पिगी बैंक
20 पट्टियोंवाले हर पैक के साथ

उपहार
स्टॉक रहने तक ही.

हैण्डीप्लास्ट पट्टियाँ

न केवल रोगाणुओं से बचाए,
बल्कि घाव भी जल्दी अच्छा करे.

LP 2184 HN

फोटो-परिचयोक्ति-प्रतियोगिता :: पुरस्कार ५०)

पुरस्कृत परिचयोक्तियां मार्च १९८६ के अंक में प्रकाशित की जायेंगी ।

Mrs. Rajamani

Pranlal K. Patel

★ उपर्युक्त फोटो की सही परिचयोक्तियाँ एक शब्द या छोटे वाक्य में हों। ★ जनवरी १० तक परिचयोक्तियाँ प्राप्त होनी चाहिए। ★ अत्युत्तम परिचयोक्ति को (दोनों परिचयोक्तियों को मिलाकर) ५० रु. का पुरस्कार दिया जाएगा। ★ दोनों परिचयोक्तियाँ केवल कार्ड पर लिखकर निम्न पते पर भेजें: चन्दामामा फोटो-परिचयोक्ति-प्रतियोगिता, मद्रास-२६

नवम्बर के फोटो - परिणाम

प्रथम फोटो : अगर पंख होते !

द्वितीय फोटो : तो उड़ जाते !!

प्रेषक : बंशाली, एफ ४/११, बसंत बहार, नई दिल्ली - ११० ०५६

"क्या आप जानते हैं" के उत्तर

१. जापान के कममारा में २. श्रीलंका के कांडी नगर में ३. गेलिलियो को ४. गुलामों की बिक्री के व्यापार को रोकने के हेतु ५. फिलिप्पाइन्स ।

Printed by B.V. REDDI at Prasad Process Private Ltd., 188 N.S.K. Salai, Madras 600 026 (India) and Published by B. VISWANATHA REDDI on behalf of CHANDAMAMA PUBLICATIONS, Chandamama Buildings, Vadapalani, Madras 600 026 (India). Controlling Editor: NAGI REDDI.

"जिस दिन मुझे अपना पहला मुंहासा दिखाई दिया...
क्लिअरेसिल का मुझे उसी दिन पता चला."

वो दिन मुझे आज भी याद है. दीदी की शादी को सिर्फ़ एक हफ़्ता रह गया था और मेरे मन में लड्डू फूट रहे थे. बस, शीशे के सामने खड़ी मैं अपने नये कपड़े पहन कर देख रही थी, कि मैं डर से कांप गई... मुझे अपने गाल पर कुछ दिखाई पड़ा ... एक मुंहासा. मेरा पहला पहला मुंहासा. मैं घबरा गई ... ये कैसी मुसीबत नई! नहीं .... अभी नहीं!

तभी दीदी अंदर आई. उन्होंने मेरा चेहरा देखा और कहा, "अरे पगली. इस उम्र में तो मुंहासे सभी को निकलते हैं. मुझे भी निकले थे और मैंने क्लिअरेसिल लगाई. तुम भी क्लिअरेसिल लगाओ." मैंने ऐसा ही किया. और सचमुच क्लिअरेसिल ने असर दिखाया.

अब मैं क्या बताऊं आपसे कि दीदी की शादी में मुझे कितना मज़ा आया.

क्लिअरेसिल कील-मुंहासे साफ़ करे और उन्हें फैलने से रोके.

OBM/5687/HN

क्लिअरेसिल

कील-मुंहासों का स्पेशलिस्ट, जो सचमुच असरदार है